अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका – जनवरी २०२०

श्रीमाँ का प्रतीक

श्रीमाँ का प्रतीक

विषय-सूची

(श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के वचन)

सन्देश/सम्पादकीय	३
श्रीमाँ का प्रतीक	४
परम जननी, महाशक्ति	६
माँ के चार महान् स्वरूप	११
भगवती माँ के अन्य महान् व्यक्तित्व	२२
बारह गुण	२७
परीक्षक	५२
'पुरोधा'	
दैनन्दिनी	५४
केवल उन्हीं के यहाँ पधारे हों...	५६

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—१८०रु.; तीन वर्ष—५२०रु.; पाँच वर्ष—८६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू, पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

सम्पादिका : वन्दना

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

सन्देश

तुम्हें हमेशा पूरी-पूरी सहायता दी जाती है, लेकिन तुम्हें उसे अपने बाहरी साधनों द्वारा नहीं बल्कि अपने हृदय की नीरवता में ग्रहण करना सीखना होगा। तुम्हारे हृदय की नीरवता में ही भगवान् तुमसे बोलेंगे, तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करेंगे और तुम्हें अपने लक्ष्य तक पहुँचायेंगे। लेकिन इसके लिए तुम्हारे अन्दर 'भागवत कृपा' और 'प्रेम' में पूरी श्रद्धा होनी चाहिये।
१८ जनवरी १९६२ —श्रीमाँ

सम्पादकीय : हम प्रवेश कर रहे हैं बहुत ही विशेष वर्ष, २०२० में। पॉण्डिचेरी में श्रीमाँ के अन्तिम तथा स्थायी आगमन का पावन **शताब्दी** वर्ष है यह। हम भक्तिपूर्वक इस वर्ष का स्वागत कर रहे हैं और इस अंक में हमने उनके प्रतीक, उनके महान् स्वरूप इत्यादि के बारे में उनकी तथा श्रीअरविन्द की कृतियों के गभीर समुद्र से निकले मोतियों की एक माला पिरोयी है। प्रतीक हमेशा गभीरतर सत्य का प्रतिनिधित्व करता है। श्रीमाँ का प्रतीक जिन सत्यों को अभिव्यक्त तथा उद्घाटित करता है उन पर चिन्तन-मनन करना कितना भव्य है! और अगर हम उसमें छिपे महान् सत्य को अपने जीवन में उतार सकें, अपनी सारी सत्ता को श्रीमाँ के प्रतीक के साथ एक होने का प्रयास करें तो सोने में सुहागा हो जाये, क्योंकि वह अपने अन्दर योग की सम्पूर्णता वहन करता है, जिस योग का हमें अनुसरण करना है, जिन शक्तियों को हमें धारण करना है, जिन गुणों को हमें अपने अन्दर विकसित करना है उन सबका मार्ग-दर्शन हमें यहाँ मिल जायेगा और तब हम अपने अहंकार को गद्दी से उतार कर, उसकी जगह अपनी सत्ता के गर्भगृह में 'उनके' प्रशस्त-असीम 'सत्य' को बिठा सकेंगे।

श्रीमाँ का प्रतीक

'माता' पुस्तक के मुखपृष्ठ पर छपे श्रीमाँ के प्रतीक के केन्द्रीय बिन्दु तथा "चार शक्तियों" के लिए कौन से रंगों का उपयोग करना उचित होगा? मैं पाउडर से प्रतीक का डिज़ाइन बनाने की सोच रहा हूँ जिसके अन्तिम घेरे को मैं दोहरा कर दूँगा।

केन्द्र और चार शक्तियाँ सफ़ेद। बाहर के सभी १२ दल भिन्न रंगों के हों और उन्हें तीन वर्गों में बाँटा जाये, १—पहले वर्ग में लाल रंग नारंगी से होता हुआ पीले की ओर बढ़े, २—दूसरे वर्ग में पीला रंग हरे से होता हुआ नीले तक जाये, ३—तीसरे में नीला रंग बैंगनी से होता हुआ लाल तक पहुँच जाये। अगर सफ़ेद सुविधाजनक न हो तो केन्द्र में सुनहरा चूर्ण भरा जा सकता है।

*

मैं प्रायः श्रीमाँ के प्रतीक (चक्र) और उसके अर्थ के विषय में सोचता रहा हूँ। मैंने इसे इस प्रकार समझा है :
मध्य का वृत्त—परात्पर शक्ति।
अन्दर की चार पंखुड़ियाँ—अतिमानस से अधिमानस तक कार्य करने वाली चार शक्तियाँ।
बाहर की बारह पंखुड़ियाँ—अधिमानस से अन्तःप्रेरणा और मन तक उन चार शक्तियों का बारह शक्तियों में विभाजन।
क्या मेरी धारणा तर्कसंगत है?

तत्त्वतः (सामान्य सिद्धान्त के रूप में) बारह शक्तियाँ वे स्पन्दन हैं जो पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए अनिवार्य हैं। ये बारह आरम्भ से ही श्रीमाँ के मस्तक के ऊपर दिखलायी देती हैं। अतः, ये वास्तव में सूर्य की बारह रश्मियाँ हैं, सात अथवा बारह ग्रह इत्यादि नहीं हैं।

शक्तियों के ब्योरे का ठीक-ठीक अर्थ करने का जहाँ तक सम्बन्ध है, मैं कोई ऐसी चीज़ नहीं देखता जो तुम्हारे बताये हुए क्रम के विरुद्ध हो। यह अर्थ अच्छी तरह लग सकता है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ५९७-५९८ **श्रीअरविन्द**

केन्द्रीय वृत्त परम जननी, 'महाशक्ति' का प्रतीक है।

चार केन्द्रीय पंखुड़ियाँ माँ के चार रूप हैं—और बारह पंखुड़ियाँ, उनकी बारह कलाएँ।

*

यह 'परम चेतना' के श्वेत 'कमल' का प्रतीकात्मक चित्र है। इसके केन्द्र में 'महाशक्ति' (माँ का वह रूप जो वैश्व सृष्टि में व्यक्त हुआ) अपने चार रूपों और बारह कलाओं के साथ हैं।

'**श्रीमातृवाणी**', खण्ड १३, पृ. ६५

परम जननी, महाशक्ति

(परम पुरुष की चेतना और शक्ति)

माँ की चार शक्तियाँ उनके चार प्रमुख व्यक्तित्व हैं। वे उनकी दिव्यता के अंश और साकार रूप हैं जिनके द्वारा वे अपने जीवों पर क्रिया करती हैं और लोक-लोकान्तर की अपनी सृष्टियों में व्यवस्था और समस्वरता लाती हैं और अपनी हज़ारों शक्तियों के कार्य-सूत्र का सञ्चालन करती हैं। माता हैं तो एक ही, पर वे हमारे सामने भिन्न-भिन्न रूपों में आती हैं। उनकी अनेक शक्तियाँ और व्यक्तित्व हैं। उनसे निकले हुए बहुत-से रूप और विभूतियाँ हैं जो सृष्टि में उनका काम करते हैं।

जिस 'एक' की हम माता के रूप में पूजा करते हैं वे भागवत चित्-शक्ति हैं जो सारी सृष्टि पर छायी हुई हैं। एक होते हुए भी उनके इतने अधिक पहलू हैं कि तेज़-से-तेज़ मन और अधिक-से-अधिक स्वतन्त्र और विशाल बुद्धि के लिए भी उनकी गति का अनुसरण कर सकना असम्भव है। माता परम-पुरुष की चेतना और शक्ति हैं और वे अपनी सारी सृष्टियों के बहुत ऊपर हैं। फिर भी उनकी गतिविधि की कुछ चीज़ें उनके साकार रूपों के द्वारा देखी और अनुभव की जा सकती हैं और ज़्यादा आसानी से पकड़ में आ सकती हैं क्योंकि भगवती माँ जिन दिव्य रूपों में अपने जीवों के सम्मुख प्रकट होना स्वीकार करती हैं उनके स्वभाव और कर्म ज़्यादा निश्चित और सीमित होते हैं।

मानव व्यक्तित्व और दिव्य प्रकृति के बीच की कड़ी

जब हम समस्त जीवों को तथा विश्व को धारण करने वाली सचेतन शक्ति के साथ एकता के सम्पर्क में आते हैं तभी माता की तीन प्रकार की सत्ता से अवगत हो सकते हैं। वे परात्पर आद्या परमा शक्ति के रूप में सभी लोकों के ऊपर खड़ी रह कर परम-पुरुष के कभी व्यक्त न होने वाले रहस्य के साथ सृष्टि का नाता जोड़ती हैं। वैश्व रूप में वे सारे ब्रह्माण्ड में बसी हुई, महाशक्ति के रूप में इन सभी सत्ताओं को रचती हैं, इन सब अनगिनत प्रक्रियाओं और शक्तियों को धारण करती हैं और उनमें समायी रहती हैं, वे ही उन्हें सहारा देती हैं और उनका सञ्चालन करती हैं। व्यक्तिगत रूप में वे अपनी सत्ता के इन दोनों अधिक विशाल रूपों की शक्ति को मूर्तरूप देती हैं, उन्हें जीवन देती हैं और हमारे समीप लाती हैं। वे मानव व्यक्तित्व और दिव्य प्रकृति के बीच की कड़ी बनती हैं।

एकमेव आद्या परात्पर शक्ति

एकमेव आद्या परात्पर शक्ति के रूप में माता सब लोकों के ऊपर स्थित हैं और अपनी शाश्वत चेतना में परम पुरुष को धारण करती हैं। वे अकेली ही अपने अन्दर चरम शक्ति और ऐसी उपस्थिति को लिये रहती हैं जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वे ही उन सत्यों को धारण करती या पुकारती हैं जिन्हें इस जगत् में प्रकट होना है। वे उन सत्यों को, उस रहस्यमय स्थान से, जहाँ वे छिपे हुए थे, उतार कर अपनी अनन्त चेतना की ज्योति में नीचे लाती हैं और उन्हें अपने सर्वशक्तिमान् सामर्थ्य के द्वारा शक्ति का रूप तथा असीम जीवन और विश्व में शरीर प्रदान करती हैं। परम पुरुष उन माता के अन्दर सनातन काल के लिए अनन्त सच्चिदानन्द के रूप में अभिव्यक्त हैं और उन्हीं के द्वारा लोकों में वे ईश्वर-शक्ति के एक और द्विविध रूप में तथा पुरुष-प्रकृति के द्वैत तत्त्व में अभिव्यक्त होते हैं। परम पुरुष माता के द्वारा अनेक लोकों और चेतना की भूमिकाओं में तथा देवता और उनकी शक्तियों में मूर्तिमान् हुए हैं। उन्हीं के कारण वे जाने और अजाने लोकों में जो कुछ है उन सब रूपों में साकार हुए हैं। सब कुछ परम पुरुष के साथ माता की लीला है। माता ने ही इस सारे संसार में सनातन के रहस्यों और अनन्त के चमत्कारों को व्यक्त किया

है। वे ही सब कुछ हैं क्योंकि सभी चीज़ें दिव्य चित्-शक्ति के अंश और भाग हैं। माता जिस बात का निश्चय करती हैं और जिसके लिए परम पुरुष स्वीकृति देते हैं उसके सिवाय यहाँ या कहीं और कुछ भी नहीं हो सकता। परम पुरुष की प्रेरणा से माता अपने सर्जनशील आनन्द में बीज के रूप में डाल कर जिन चीज़ों को देखती और आकार देती हैं उनके सिवाय और कोई चीज़ रूप धारण नहीं कर सकती।

महाशक्ति, विश्व-माता

अपनी परात्पर चेतना में महाशक्ति, विश्व-माता, परम पुरुष से जो कुछ प्राप्त करती हैं उसे मूर्त रूप देकर अपने बनाये हुए लोकों में स्वयं भी प्रवेश कर जाती हैं। माता की उपस्थिति उन लोकों को अपने दिव्य व्यक्तित्व, अपने धारण करने वाले बल और आनन्द से भर देती है और उन्हें सहारा देती है। इनके बिना उन लोकों का अस्तित्व ही न हो पाता। हम जिसे प्रकृति कहते हैं वह माता का एकदम बाहरी और कार्य-निर्देशक रूप है। वे अपनी शक्तियों और प्रक्रियाओं की समस्वरता की व्यवस्था करती हैं, प्रकृति के कार्यों को आगे बढ़ाती हैं, इन्द्रियों या अनुभव के द्वारा पकड़ में आ सकने वाली या जीवन की गति के लिए उपयोगी हर वस्तु को प्रकट या अप्रकट रूप से सञ्चालित करती हैं। लोकों में से प्रत्येक, अपने-अपने लोक-संस्थान या विश्व-ब्रह्माण्ड की महाशक्ति की एक लीला के सिवाय और कुछ नहीं है। ये महाशक्ति परात्पर माता की वैश्व आत्मा और वैश्व व्यक्तित्व के रूप में उपस्थित हैं। प्रत्येक लोक का वही रूप होता है जो माता ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा, अपनी शक्ति और सौन्दर्य से सँजोया और अपने आनन्द द्वारा पैदा किया है।

परन्तु उनकी सृष्टि के अनेक स्तर हैं, भागवत शक्ति के अनेक सोपान हैं। हम जिस अभिव्यक्ति के भाग हैं उसकी चोटी पर अनन्त सत्ता, चेतना, शक्ति और आनन्द के लोक हैं। उनके ऊपर माता बिना किसी आवरण के शाश्वत शक्ति के रूप में रहती हैं। वहाँ सभी सत्ताएँ अवर्णनीय पूर्णता और अटल एकता में निवास करती और विचरण करती हैं क्योंकि वहाँ माता उन्हें अपने बाहुओं में हमेशा ही सुरक्षित रूप से लिये रहती हैं। पूर्ण अतिमानस-सृष्टि के लोक हमारे ज़्यादा निकट हैं। माता वहाँ अतिमानसिक

महाशक्ति हैं, भागवत सर्वज्ञ संकल्प और सर्वसमर्थ ज्ञान की शक्ति हैं जो अपने अचूक कर्मों में हमेशा दिखायी देती हैं और उनके कर्मों में सहज रूप से सब प्रकार की पूर्णता होती है। वहाँ सभी कर्म सत्य की ओर बढ़ते हुए क़दम हैं, सभी सत्ताएँ दिव्य ज्योति की आत्मा, बल और शरीर हैं, वहाँ के सभी अनुभव प्रगाढ़ और परम आनन्द के सागर, बाढ़ और लहरें हैं। लेकिन यहाँ, जहाँ हम निवास करते हैं, अज्ञान के लोक हैं, मन, प्राण और शरीर के लोक हैं जो अपनी मूल चेतना से बिछुड़ गये हैं। यह पृथ्वी उनका एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है और इसका विकास-क्रम एक सूक्ष्म और निर्णायक प्रक्रिया है। विश्व-माता इसे भी, इसके सारे अज्ञान, संघर्ष और अपूर्णता के बावजूद, सहारा दिये हुए हैं। महाशक्ति इसे भी इसके गुप्त लक्ष्य की ओर आगे बढ़ाती और प्रेरित करती हैं।

अतिमानस-ज्योति, सत्य-जीवन और सत्य-सृष्टि के लोकों को ऊपर से यहाँ नीचे लाना है। नीचे चेतना के स्तरों की चढ़ती-उतरती दोहरी सीढ़ी के जैसी श्रेणियाँ हैं जिनमें चेतना पहले जड़-तत्त्व की निश्चेतना में गिरती है और फिर प्राण, मन और अन्तरात्मा को जीवन में खिलाती हुई आत्मा की अनन्तता में ऊपर उठती है। माता इन दोनों के बीच में अज्ञान के त्रिविध जगत् की महाशक्ति के रूप में निवास करती हैं। माता देवताओं के ऊपर रह कर जो कुछ देखती, अनुभव करती और अपने अन्दर से उत्पन्न करती हैं उसके द्वारा वे धरती के विकास-क्रम का निर्णय करती हैं और उस कार्य के लिए अपनी सभी शक्तियाँ और व्यक्तित्व अपने सामने रखती हैं। वे उनकी अंश-विभूतियों को निचले लोकों में मध्यस्थता, शासन, युद्ध और विजय प्राप्त करने के लिए, उनके काल-चक्र को बदलने और रास्ता दिखाने के लिए और उनकी शक्तियों को व्यक्तिगत और समष्टिगत मार्ग दिखाने के लिए भेजती हैं। मनुष्यों ने युग-युगान्तरों से दिव्य रूप और दिव्य व्यक्तित्व के रूप में इन अंश-विभूतियों की भिन्न-भिन्न नामों से पूजा करके वस्तुतः स्वयं माता की ही पूजा की है। और साथ ही जिस तरह माता ईश्वर की विभूतियों के मन और शरीर तैयार करके उन्हें रूप प्रदान करती हैं उसी तरह अपनी इन शक्तियों और अंश-विभूतियों के द्वारा वे अपनी विभूतियों के मन और शरीर भी तैयार करती हैं, ताकि वे भौतिक जगत् में मानव चेतना के भेस में अपनी शक्ति, अपने गुण और अपनी

उपस्थिति की कुछ किरणों को अभिव्यक्त कर सकें। इस धरती की लीला के सभी दृश्य नाटक के समान हैं और इनकी योजना और व्यवस्था माँ ने ही की है जिसमें वैश्व देव उनके सहायक हैं और वे स्वयं प्रच्छन्न अभिनेता।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १४-१७ **श्रीअरविन्द**

माता केवल ऊपर रह कर ही सब पर शासन नहीं करतीं, वे निचले त्रिविध लोकों में भी उतर आती हैं। निर्वैयक्तिक रूप से सभी चीज़ें, यहाँ तक कि अज्ञान की गतियाँ भी—छिपी हुई शक्ति के रूप में स्वयं वे ही हैं। वे उन्हीं के घटे हुए तत्त्व में उनकी प्राकृतिक शक्ति और प्राकृतिक शरीर हैं और इनका अस्तित्व इसलिए है कि अनन्त की सम्भावनाओं में से कुछ को मूर्त रूप देने के लिए परम पुरुष का रहस्यमय आदेश हुआ था, उस आदेश को मान कर माता ने महान् बलिदान देना स्वीकार किया और अन्तरात्मा और अज्ञान के मुखौट ों को पहनना स्वीकारा। व्यक्तिगत रूप से भी माता ने इस जगत् के अन्धकार में उतरना स्वीकार किया ताकि वे उसे ज्योति की ओर ले जा सकें; वे मिथ्यात्व और भ्रान्ति में उतरीं ताकि उन्हें सत्य में बदला जा सके; इस मृत्यु में उतरीं ताकि उसे दिव्य जीवन में बदल सकें; इस सांसारिक दुःख में और उसके दुःसाध्य कष्ट और पीड़ा में उतरीं ताकि अपने परम आनन्द की तीव्रता से इनका रूपान्तर करके इनका अन्त कर सकें। उन्होंने अपने बच्चों के लिए गहरे और महान् प्रेम के कारण अज्ञान का लबादा पहनना स्वीकार किया, जन्म के प्रवेश-द्वार में घुसना स्वीकारा जो वास्तव में मृत्यु ही है। अन्धकार और मिथ्यात्व की शक्तियों के आक्रमणों और कष्ट देने वाले प्रभावों को सहने की, सृष्टि के दुःख-दर्द और यातनाओं को स्वीकारने की कृपा की क्योंकि उन्हें लगा कि केवल इसी उपाय से जगत् को ज्योति, आह्लाद, सत्य और अनन्त जीवन की ओर उठाया जा सकता है। यही वह महान् बलिदान है जिसे कभी-कभी पुरुष का बलिदान कहा जाता है, पर अधिक गहरे अर्थों में यह प्रकृति की आत्माहुति है, भगवती माँ का बलिदान है।

CWSA *खण्ड ३२, पृ. १७* ***श्रीअरविन्द***

माँ के चार महान् स्वरूप

माँ के चार महान् स्वरूप, माँ की जो प्रमुख शक्तियाँ और व्यक्तित्व हैं उनमें से चार रूप, इस विश्व का मार्गदर्शन करने तथा भौतिक लीला के साथ व्यवहार करने के लिए आगे रहते हैं। उनमें से एक स्थिर विशालता, व्यापक ज्ञान, प्रशान्त अनुग्रह और अपार करुणा, सबसे बढ़े-चढ़े, सर्वश्रेष्ठ वैभव और सब पर शासन करने वाली महानता का व्यक्तित्व है। दूसरा रूप उनकी भव्य शक्ति के बल को, दुर्धर्ष आवेग को, उनके क्षात्र स्वभाव को, दुर्दमनीय संकल्प को, प्रचण्ड वेग और सारे संसार को हिला देने वाली शक्ति को मूर्त रूप देता है। तीसरा रूप उनकी गभीर और रहस्यमय सुन्दरता, समस्वरता और सामञ्जस्य, उनकी गूढ़ और सूक्ष्म समृद्धि और विवश करने वाले आकर्षण और हृदय को जीत लेने वाले लावण्य के कारण उज्ज्वल, मधुर और अद्‌भुत है। और चौथा स्वरूप उनके अन्तरंग ज्ञान, सचेत और दोष-रहित कर्म तथा हर चीज़ में शान्त और यथार्थ पूर्णता के गुप्त, गम्भीर सामर्थ्य से युक्त होता है। इन स्वरूपों के कुछ गुण हैं —बुद्धिमत्ता, शक्ति, सामञ्जस्य और पूर्णता, और वे अपने साथ धरती पर इन गुणों को लाते हैं और मनुष्य के रूप में आने वाली अपनी विभूतियों में प्रकट करते हैं। जो लोग अपनी भौतिक प्रकृति को माता के सीधे और जीते-जागते प्रभाव की ओर खोल सकते हैं उनके दिव्यता की ओर चढ़ने के अनुपात में ही उनमें इन गुणों की स्थापना होगी। इन चार स्वरूपों के चार महान् नाम हैं, महेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी, और महासरस्वती।

अदिति—भागवत चेतना
(श्वेत कमल)
पवित्र, निर्मल, भव्य रूप से बलशाली
(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

महेश्वरी

राजराजेश्वरी महेश्वरी—चिन्तनशील मन और संकल्प के ऊपर 'बृहत्' में विराजती हैं और इन दोनों को ऊँचा उठा कर और महान् बना कर प्रज्ञा—ज्ञान—और विशालता देती हैं या उनमें उनसे परे की किसी उच्चतर भव्यता की बाढ़ ला देती हैं। महेश्वरी ही वे ज्ञानमयी और शक्तिशाली माता हैं जो हमें अतिमानसिक अनन्तताओं के प्रति, विश्व-भर की विशालता, सबसे ऊँची ज्योति की भव्यता की ओर, चमत्कारिक ज्ञान के ख़ज़ाने की ओर और माता की शाश्वत शक्तियों की असीम गति के प्रति खोल देती हैं। वे प्रशान्त और अद्‌भुत हैं, सदा ही महान् और स्थिर रहती हैं। उन्हें कोई चीज़ विचलित नहीं कर सकती क्योंकि उनमें सम्पूर्ण ज्ञान है, वे जो

कुछ जानना चाहें, वह उनसे छिपा नहीं रहता। वे सभी वस्तुओं को, सभी सत्ताओं को, सबके स्वभाव को और उन्हें चलाने वाले तत्त्वों को, संसार के नियमों और उसके कालचक्र को जानती हैं। वे भूत और वर्तमान को जानती हैं और जानती हैं कि क्या होना चाहिये। उनमें एक ऐसी शक्ति है जो हर चीज़ का सामना करके उस पर अधिकार कर लेती है, उनकी विशाल, अगोचर प्रज्ञा और उत्कृष्ट प्रशान्त बल के आगे अन्त तक कोई नहीं ठहर सकता। वे अपने संकल्प में सम, धीर और अविचल हैं। वे मनुष्यों के साथ उनकी प्रकृति के अनुसार और चीज़ों और घटनाओं के साथ उनकी शक्ति और उनमें छिपे सत्य के अनुसार व्यवहार करती हैं। उनमें पक्षपात का नाम भी नहीं है पर वे परम पुरुष के आदेश का पालन करती हैं, कुछ को ऊपर उठाती हैं और कुछ को नीचे फेंकती या अपने पास से हटा कर अज्ञानान्धकार में धकेल देती हैं। वे ज्ञानी को अधिक महान् और ज्योतिर्मयी प्रज्ञा—ज्ञान—देती हैं और सूक्ष्म दृष्टिवाले व्यक्ति को अपनी मन्त्रणाओं में स्थान देती हैं, विरोधियों पर उनके विरोध का परिणाम लादती हैं और अज्ञानी और मूर्ख को उसके अज्ञान और अन्धेपन के अनुसार चलाती हैं। वे प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति के अलग-अलग तत्त्वों का, उन तत्त्वों की आवश्यकता, प्रेरणा और माँगे हुए फल के अनुसार व्यवहार करती और उत्तर देती हैं, उन पर ज़रूरी दबाव डालती हैं या फिर उन्हें अपनी पोसी हुई स्वाधीनता में अज्ञान-भरे रास्तों पर समृद्धि या नाश के लिए छोड़ देती हैं। वे सबसे ऊपर हैं, किसी से बँधी नहीं हैं। उन्हें विश्व की किसी चीज़ से लगाव नहीं है। फिर भी उनके अन्दर—औरों की अपेक्षा कहीं अधिक—विश्वजननी का मातृ-हृदय है, क्योंकि उनकी करुणा अनन्त और अखूट है। उनकी दृष्टि में सभी—यहाँ तक कि असुर, राक्षस, पिशाच, विद्रोही और विरोधी भी—उनके बच्चे और उस 'एक' के अंश हैं। उनका त्यागना भी केवल स्थगित करना है, उनका दण्ड भी कृपा है। लेकिन उनकी करुणा उनकी बुद्धि को अन्धा नहीं बनाती और न उनके कर्म को नियत पथ से डिगाती है। वस्तुओं का सत्य ही उनका एकमात्र लक्ष्य है और ज्ञान ही उनकी शक्ति का केन्द्र। हमारी अन्तरात्मा और प्रकृति को दिव्य सत्य में बदलना उनका उद्देश्य और पुरुषार्थ है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १८-१९

महाकाली

महाकाली और ही प्रकृति की हैं। विस्तार नहीं ऊँचाई, प्रज्ञा नहीं बल और सामर्थ्य उनकी शक्ति के विशेष गुण हैं। उनमें अत्यधिक तीव्रता है, सफलता पाने के लिए शक्ति का एक प्रचण्ड आवेग है, एक दिव्य उग्रता है जो हर सीमा और बाधा को छिन्न-भिन्न करने के लिए तेज़ी से आगे बढ़ती है। उनकी सारी दिव्यता उनके तूफ़ानी-प्रचण्ड कार्यों की भव्यता में फूट पड़ती है; वे तेज़ी और तुरन्त फलदायक प्रक्रियावाली हैं, उनका वार सीधा और तेज़ होता है। वे सामने से ऐसा प्रहार करती हैं जिसके आगे सब कुछ धरा का धरा रह जाता है। असुर के लिए उनका मुख भयानक है, भगवान् से द्वेष करने वालों के विरुद्ध उनका मनोभाव भयंकर और निष्ठुर होता है क्योंकि वे ऐसी रणचण्डी हैं जो कभी युद्ध से पीछे नहीं हटतीं। वे अपूर्णता को नहीं सहतीं, वे मनुष्य के अन्दर अनिच्छुक तत्त्वों के साथ कठोर व्यवहार करती हैं और जो आग्रहपूर्वक अज्ञान और अन्धकार

से चिपटे रहते हैं उनके साथ सख़्ती से व्यवहार करती हैं। उनका कोप विश्वासघात, मिथ्याचार और अशुभ के विरुद्ध भीषण और तीव्र होता है। वे भगवान् के कार्य में उदासीनता, उपेक्षा और प्रमाद नहीं सह सकतीं और ज़रूरत पड़ने पर असमय सोने वाले और आवारागर्द को प्रहार द्वारा तीव्र पीड़ा देकर तुरन्त जगा देती हैं। शीघ्रगामी, सरल और ऋजु वृत्तियाँ, निःसंकोच और निर्बाध गतियाँ और धधकती ज्वाला-सी अभीप्सा महाकाली की गति हैं। उनका उत्साह अदम्य है, उनकी दृष्टि और संकल्प गरुड़ की उड़ान की तरह उच्च और व्यापक हैं। उनके चरण ऊँचे मार्ग पर तेज़ी से बढ़ते हैं और उनके हाथ प्रहार करने और आड़े वक़्त सहायता करने के लिए फैले रहते हैं। क्योंकि वे भी माँ हैं और उनका प्रेम भी उनके प्रकोप के जितना ही तीव्र है, उनमें गहरी और प्रगाढ़ उत्कट अनुकम्पा है। अगर साधक उन्हें अपनी पूरी शक्ति के साथ हस्तक्षेप करने की अनुमति दे, तो उसे रोकने वाली बाधाएँ या आक्रमण करने वाले शत्रु क्षण-भर में भंगुर चीज़ों की तरह नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। अगर उनका प्रकोप विरोधियों के लिए भीषण है और उनके दबाव की तीव्रता दुर्बल और भीरु के लिए कष्टदायक है तो महान्, शक्तिशाली और उदात्त लोग उनसे प्रेम करते और उनकी पूजा करते हैं, क्योंकि वे अनुभव करते हैं कि माता के प्रहार उनके भौतिक आधार के विद्रोही तत्त्वों को ठोक-पीट कर सामर्थ्य और पूर्ण सत्य में बदल देते हैं, उनकी टेढ़ी-मेढ़ी और विकृत चीज़ों को हथौड़े मार-मार कर सीधा कर देते हैं और अशुद्ध तथा दोषपूर्ण चीज़ों को निकाल बाहर करते हैं। जो कार्य एक दिन में किया जाता है उसमें उनके बिना शताब्दियाँ लग जातीं। उनके बिना आनन्द विशाल और गम्भीर या मृदु, मधुर और सुन्दर तो हो सकता है पर अपनी तीव्रतम प्रगाढ़ता के प्रज्वलित उल्लास को खो बैठेगा। महाकाली ज्ञान को विजयी शक्ति प्रदान करती हैं, सौन्दर्य और सामञ्जस्य को श्रेष्ठ तथा ऊपर उठती हुई गति देती हैं और पूर्णता के धीमे और कठिन प्रयास को ऐसा वेग देती हैं जो उसकी गति को कई गुना बढ़ा देता है और लम्बे मार्ग को छोटा कर देता है। उन्हें ऐसी किसी चीज़ से सन्तोष नहीं होता जो चरम आनन्द की पराकाष्ठा से, ऊँचे-से-ऊँचे शिखरों से, अत्यधिक उदात्त लक्ष्य से या अत्यन्त विशाल दृश्यावलियों से कम हो। इसीलिए भगवान् की विजयी शक्ति उनके साथ रहती है और उनकी अग्नि और आवेग और द्रुत गति की कृपा से भविष्य की जगह वर्तमान में ही परम सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। CWSA खण्ड ३२, पृ. १९-२०

महालक्ष्मी

केवल प्रज्ञा और शक्ति ही भगवती माँ के व्यक्त रूप नहीं हैं। उनकी प्रकृति का एक और सूक्ष्म रहस्य है जिसके बिना प्रज्ञा और शक्ति अपूर्ण रहती हैं, और पूर्णता भी पूर्ण नहीं हो सकती। ज्ञान और शक्ति के ऊपर शाश्वत सौन्दर्य का चमत्कार, दिव्य सामञ्जस्यों का अगम रहस्य है, अति सम्मोहक विश्वव्यापी मनोहरता और आकर्षण का जादू है जो वस्तुओं, शक्तियों और सत्ताओं को अपनी ओर आकर्षित करके एक जगह बाँधे रखता है और उन्हें मिलने और एक होने के लिए बाधित करता है ताकि छिपा हुआ आनन्द परदे के पीछे से अपना साज़ बजा सके और उन्हें अपना ताल-छन्द और अपनी टेक बना सके। यह महालक्ष्मी की शक्ति है और देहधारी सत्ताओं के लिए दिव्य शक्ति का और कोई रूप इससे अधिक आकर्षक नहीं होता। पार्थिव प्रकृति की क्षुद्रता को महेश्वरी इतनी अधिक

शान्त, महान् और दूर लग सकती हैं कि वह उनके पास नहीं जा सकती और न उन्हें अपने अन्दर समा सकती है। उसकी निर्बलता को महाकाली इतनी अधिक तेज़ और भयानक लग सकती हैं कि वह उन्हें सह भी न सके, परन्तु महालक्ष्मी की ओर सभी बड़े उल्लास और उत्कण्ठा के साथ मुड़ते हैं क्योंकि वे भगवान् की सम्मोहक मधुरता का जादू फैलाती हैं। उनके पास होने का अर्थ ही है गहन सुख पाना और उन्हें अपने हृदय के अन्दर अनुभव करने का अर्थ है जीवन का आनन्दोल्लास और चमत्कार से भर जाना। महालक्ष्मी से मनोहरता, मोहकता और मृदुता ऐसे ही प्रवाहित होती हैं जैसे सूर्य से प्रकाश। वे जहाँ कहीं अपनी अद्‌भुत दृष्टि को स्थिर करती हैं या जिस पर अपने स्मित की मधुरता डालती हैं वही आत्मा उनकी पकड़ में आकर बन्दी बन जाती है और अथाह आनन्द की गहराई में डुबकी लगाती है। उनके हाथों का स्पर्श चुम्बक की तरह आकर्षक है, और उनका रहस्यमय कोमल प्रभाव मन, प्राण और शरीर को परिष्कृत करता है और जहाँ-जहाँ उनके चरण पड़ते हैं वहाँ-वहाँ सम्मोहक आनन्द की दिव्य धाराएँ बहने लगती हैं।

फिर भी उनकी मोहिनी शक्ति की माँग को पूरा करना या उनकी उपस्थिति को बनाये रखना आसान नहीं है। मन और अन्तरात्मा का सामञ्जस्य और सौन्दर्य, विचारों और भावनाओं का सामञ्जस्य और सौन्दर्य, हर बाहरी गतिविधि और क्रिया में सामञ्जस्य और सौन्दर्य, जीवन और उसके परिवेश का सामञ्जस्य और सौन्दर्य—यही है महालक्ष्मी की माँग। जहाँ सृष्टि के गूढ़, रहस्यमय आनन्द के साथ समस्वरता होती है, जहाँ 'सर्व सुन्दर' के आह्‌वान का उत्तर मिलता है और भगवान् की ओर उन्मुख बहुत-से व्यक्तियों की मैत्री, एकता और प्रसन्न जीवन-प्रवाह होते हैं, महालक्ष्मी उसी वातावरण में निवास करना स्वीकार करती हैं। जो कुछ कुरूप, क्षुद्र, तुच्छ है, जो दीन, मलिन और कुत्सित है, जो कुछ उजड्ड और असंस्कृत है वह उनके आगमन को रोकता है। जहाँ प्रेम और सौन्दर्य नहीं हैं या जहाँ वे जन्म लेने से इन्कार करते हैं, ऐसे स्थान पर महालक्ष्मी नहीं आतीं और जहाँ वे घटिया चीज़ों के साथ मिले रहते हैं या उनके कारण भद्दे बन जाते हैं वहाँ से महालक्ष्मी तुरन्त मुँह मोड़ लेती हैं या वहाँ अपना ऐश्वर्य उँडेलने की परवाह नहीं करतीं। अगर वे मनुष्यों के हृदयों में अपने-आपको स्वार्थ,

घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, असूया और कलह से घिरा हुआ पाती हैं, जब पवित्र पात्र में विश्वासघात, लोभ, कृतघ्नता मिले रहते हैं, यदि वासना की ग्राम्यता और असंस्कृत या अपरिष्कृत कामना भक्ति को भ्रष्ट कर देती हैं तो ऐसे हृदयों में ये सुन्दर करुणामयी देवी क्षण-भर के लिए भी नहीं ठहरतीं, ऐसी अवस्था में वे दिव्य जुगुप्सा से भर जाती हैं और पीछे हट जाती हैं, क्योंकि वे ऐसी नहीं हैं कि आग्रह या संघर्ष करें। या फिर वे अपना मुँह ढक कर इस कड़वे और विषैले आसुरी तत्त्व के बाहर फेंके जाने की प्रतीक्षा करती हैं ताकि वे अपने आह्लादपूर्ण प्रभाव को फिर से स्थापित कर सकें। उन्हें तपस्वी की शुष्कता और कठोरता पसन्द नहीं है और न हृदय के गभीर भावावेगों का दमन या आत्मा और जीवन के सुन्दर भागों का निग्रह ही पसन्द है, क्योंकि वे प्रेम और सौन्दर्य के द्वारा ही मनुष्यों पर भगवान् का जूआ रखती हैं। उनकी परम सृष्टि में जीवन स्वर्गीय कला की एक समृद्ध कृति बन जाता है और सारा अस्तित्व एक पवित्र आनन्द का काव्य। संसार की सारी समृद्धि, सम्पदा एकत्रित करके परम व्यवस्था के लिए इकट्ठी की जाती है। उनके ऐक्य सम्बन्धी सहज ज्ञान और उनकी आत्मा के उच्छ्वास से सादी-से-सादी और मामूली-से-मामूली चीज़ें भी अद्‌भुत बन जाती हैं। हृदय में प्रवेश पा जाएँ तो वे प्रज्ञा को आश्चर्य के ऊँचे-से-ऊँचे शिखर पर पहुँचा देती हैं और उसके आगे समस्त ज्ञान से परे आनन्द-समाधि के गुप्त रहस्य खोल देती हैं। वे भक्ति को भगवान् के प्रति तीव्र आकर्षण के साथ जोड़ देती हैं, बल और शक्ति को ऐसा छन्द सिखाती हैं जिससे उनके कर्म समस्वर और सप्रमाण हो जायें। वे पूर्णता पर एक ऐसी मोहिनी छा देती हैं जिससे वह चिरस्थायी हो जाये।

CWSA खण्ड ३२, पृ. २१-२२

महालक्ष्मी का समग्र वैभव (कुमुद)
बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक तथा भौतिक—क्रिया के सभी क्षेत्रों में भावनाओं तथा कर्म का वैभव
(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

महासरस्वती

महासरस्वती माता की कर्मशक्ति और उनकी पूर्णता और सुव्यवस्था की आत्मा हैं। वे चारों में सबसे छोटी हैं, लेकिन कार्य-सञ्चालन की क्षमता में सबसे अधिक निष्णात हैं। वे भौतिक प्रकृति के सबसे अधिक निकट हैं। महेश्वरी जगत् की शक्तियों की विशाल रूप-रेखा तैयार करती हैं, महाकाली उनकी शक्ति और वेग को सञ्चालित करती हैं, महालक्ष्मी उनके ताल और लय को प्रकट करती हैं, किन्तु महासरस्वती उनके संगठन और कार्य-सञ्चालन के ब्योरे, विवरण, विभिन्न भागों के पारस्परिक सम्बन्ध और

बलों के सफल संयोजन और परिणाम तथा परिपूर्ति की अचूक यथार्थता की अधिष्ठात्री हैं। चीज़ों के बारे में ज्ञान, कला-कौशल और कारीगरी महासरस्वती का अपना क्षेत्र है। उनकी प्रकृति में हैं पूर्ण कार्यकर्ता का अन्तरंग और यथार्थ ज्ञान, सूक्ष्मता और धैर्य, सहज ज्ञानवाला मन, सचेतन हाथ और पारखी दृष्टि, और वे अपने चुने हुए लोगों को ये चीज़ें दे सकती हैं। यह शक्ति बलवान्, अथक, सावधान और निपुण शिल्पी, संगठन-कर्ता, शासक, कारीगर और लोकों का वर्गीकरण करने वाली है। जब वे प्रकृति के रूपान्तर और नव-निर्माण का काम हाथ में लेती हैं तो उनका काम श्रमपूर्ण और सूक्ष्म होता है और हमारे अधीर स्वभाव को बहुधा धीमा और बहुत अधिक लम्बा खिंचता हुआ लगता है, लेकिन वह स्थायी, पूर्ण और निर्दोष होता है। क्योंकि उनके काम का संकल्प अतिसतर्क, तन्द्राहीन और अश्रान्त होता है। वे हमारे ऊपर झुक कर हर छोटे-से-छोटे ब्योरे को देखती हैं और छूती हैं, हर छोटे-से-छोटे दोष, दरार, मरोड़ या अपूर्णता को खोज लेती हैं और जो हो चुका है और जो करना बाक़ी है उन दोनों के बारे में विचार करके ठीक-ठीक मूल्यांकन करती हैं। उनकी दृष्टि के लिए कोई चीज़ अतितुच्छ या प्रत्यक्ष रूप में नगण्य नहीं है। कोई भी स्पर्शातीत, छद्मवेशी, या छिपी हुई चीज़ उनसे बच नहीं सकती। वे हर एक भाग को बार-बार साँचे में ढालती हैं और तब तक मेहनत करती रहती हैं जब तक वह अपने उचित रूप और सम्पूर्ण में अपने स्थान को पा न ले, और अपने नियत प्रयोजन को सिद्ध न कर ले। लगातार मेहनत के साथ चीज़ों को व्यवस्थित और पुनर्व्यवस्थित करते हुए वे सभी प्रयोजनों और उन्हें पूरा करने के तरीक़ों पर एक साथ नज़र रखती हैं और उनका सहज ज्ञान जानता है कि किसे चुनना और किसे छोड़ना चाहिये और वे सफलता के साथ उचित यन्त्र, उचित समय, उचित परिस्थितियों और उचित प्रक्रिया को चुनती हैं। वे असावधानी, उपेक्षा और अकर्मण्यता से घृणा करती हैं। लापरवाही, टाल-मटोल के साथ, बेगार टालना या जल्दबाज़ी में किया गया काम, फूहड़पन या 'चल जायेगा' की वृत्ति और एक की जगह कुछ दूसरा ही कर बैठना, साधन और शक्ति का मिथ्या आयोजन और दुरुपयोग, काम न करना या अधूरा छोड़ देना उनके स्वभाव के लिए अप्रीतिकर और विजातीय है। जब उनका काम पूरा होता है तो कहीं

कोई भूल नहीं रहती, काम का कोई भाग ग़लत जगह पर, छूटा हुआ या दोषपूर्ण अवस्था में नहीं रहता, सब कुछ ठोस, यथार्थ, पूर्ण और प्रशंसनीय होता है। उन्हें पूर्ण पूर्णता से कम पर सन्तोष नहीं होता और अगर उन्हें सृष्टि की पूर्णता के लिए अनन्त काल तक परिश्रम करने की ज़रूरत हो तो वे उसके लिए भी तैयार रहती हैं। इसलिए माता की सभी शक्तियों में वे ही मनुष्य और उसकी हज़ारों अपूर्णताओं के साथ सबसे अधिक धीरज के साथ लगी रहती हैं। अगर हम अपने संकल्प पर एकमन हों, निष्कपट और सत्यनिष्ठ रहें तो उन कृपालु, सदा मुस्कुराने वाली, साथ रह कर सहायता करने वाली, आसानी से मुँह न मोड़ने वाली, अनुत्साहित न होने वाली, बार-बार असफल होने पर भी लगी रहने वाली माता के हाथ हमें पग-पग पर सहारा देते हैं। वे दुविधा-भरे मन को नहीं सहतीं, ढोंग, पाखण्ड, आत्मवञ्चना और बहानेबाज़ी के प्रति उनका मर्मभेदी व्यंग्य निर्मम होता है। आवश्यकता के समय वे हमारी माँ हैं, कठिनाइयों के समय मित्र हैं, स्थिर और शान्त रूप से सलाहकार और परामर्शदाता हैं। वे अपनी ज्योतिर्मयी मुस्कान से हमारी उदासी, हमारे उद्वेग और अवसाद के बादलों को तितर-बितर कर देती हैं। वे हमेशा याद दिलाती रहती हैं कि उनकी सहायता हमारे साथ है। वे शाश्वत सूर्य के प्रकाश की ओर इशारा करती हैं और दृढ़ता, निश्चलता और धैर्यपूर्वक हमें गभीर तथा उच्चतर प्रकृति की ओर सतत प्रेरित करती रहती हैं। माता की अन्य शक्तियों के सभी कार्य अपनी पूर्णता के लिए उनका सहारा लेते हैं क्योंकि वे ही भौतिक आधार को सुनिश्चित बनाती हैं, ब्योरे की सामग्री की व्यवस्था करती हैं, निर्माण के ढाँचे को खड़ा करके उसमें कीलें जड़ कर उसे मज़बूत बनाती हैं।

CWSA खण्ड ३२, पृ. २२-२३

कार्यों में महासरस्वती की पूर्णता

कामचलाऊ कार्य से कभी
सन्तुष्ट नहीं होतीं

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

भगवती माँ के अन्य महान् व्यक्तित्व

भगवती माँ के और भी महान् व्यक्तित्व हैं, लेकिन उन्हें इस धरती पर उतारना ज़्यादा कठिन था और वे धरती की चेतना के विकास में प्रधान रूप से आगे नहीं आये। उनमें से कुछ ऐसी उपस्थितियाँ भी हैं जो अतिमानसिक सिद्धि के लिए अनिवार्य हैं, विशेषकर वह गुह्य और बलशाली उल्लास तथा आनन्द का स्वरूप जो भगवान् के ऊँचे-से-ऊँचे भागवत प्रेम से प्रवाहित होता है। वह आनन्द ही अतिमानसिक आत्मा के सबसे ऊँचे शिखरों का नाता जड़-तत्त्व की गहरी-से-गहरी खाइयों के साथ जोड़ता है। उसी आनन्द के पास आश्चर्यमय, परम दिव्य जीवन की चाबी है और अब भी वह अपने गुप्त स्थानों में रहता हुआ विश्व की अन्य शक्तियों के कार्य को सहारा देता है। पर सीमित, अहंकार-भरी और अज्ञानमयी मानव प्रकृति इन महान् शक्तियों की उपस्थिति को धारण करने-योग्य नहीं है और उनकी शक्तिशाली क्रिया का आधार नहीं बन सकती। जब ये चार शक्तियाँ रूपान्तरित मन, प्राण और शरीर में अपना सामञ्जस्य और क्रिया की स्वाधीनता स्थापित कर लें तभी वे अधिक विरल या दुर्लभ शक्तियाँ धरती की गतियों में व्यक्त हो सकती हैं और अतिमानसिक क्रिया सम्भव हो सकती है। क्योंकि जब माता के सभी व्यक्तित्व इकट्ठे होकर अभिव्यक्त होते हैं और उनके अलग-अलग कार्य मिल कर एक सामञ्जस्यपूर्ण इकाई में बदल जाते हैं और माता में ऊपर उठ कर अपने अतिमानसिक देवत्व तक पहुँच जाते हैं तब माता अतिमानसिक महाशक्ति के रूप में अभिव्यक्त होती हैं और अनिर्वचनीय व्योम से अपने ज्योतिर्मय आधिभौतिक, विश्वातीत तत्त्वों की वर्षा ले आती हैं। तब मानव प्रकृति ऊर्जस्वी दिव्य प्रकृति में बदल सकती है क्योंकि अतिमानसिक ऋत्-चेतना और ऋत्-शक्ति की सभी तात्त्विक तन्त्रियाँ एक साथ गुँथ जाती हैं और जीवन-वीणा शाश्वत की लयों को बजाने-योग्य हो जाती है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. २३-२४

तीन चीज़ें तुम्हारे अन्दर अवश्य होनी चाहियें

अगर तुम यह रूपान्तर चाहते हो तो अपने-आपको बिना मीन-मेख या प्रतिरोध के माता और उनकी शक्तियों के हाथों में सौंप दो। तुम्हारे अन्दर तीन चीज़ें होनी चाहियें : सचेतनता, नम्यता और बिना शर्त समर्पण। तुम्हें अपने मन, अन्तरात्मा, हृदय, प्राण और शरीर के कोषाणुओं तक में माता का, उनकी शक्ति का, उनकी क्रिया के बारे में सचेतन ज्ञान होना चाहिये। यद्यपि वे तुम्हारी अज्ञानावस्था में, अचेतन भागों और क्षणों में भी काम कर सकती और करती हैं लेकिन यह काम वैसा नहीं होता जैसा कि तब होता है जब तुम उनके साथ जीवित-जाग्रत् सम्पर्क में होते हो। तुम्हारी पूरी प्रकृति उनके स्पर्श के प्रति नमनीय होनी चाहिये, उसे अपने-आपसे सन्तुष्ट अज्ञानी मन की तरह, जो बोध और परिवर्तन का शत्रु है, प्रश्न, तर्क-कुतर्क और शंकाएँ नहीं करनी चाहियें। उसे हठीला बन कर हर भागवत प्रभाव का अदम्य कामना और अशुभेच्छा के साथ विरोध करने वाले मानव प्राण की तरह अपनी गतिविधि के लिए दुराग्रह नहीं करना चाहिये। उसे मनुष्य की उस भौतिक चेतना की तरह निर्बल, जड़ और तमोग्रस्त नहीं होना चाहिये जो अपनी क्षुद्रता और अन्धकार से मिलने वाले सुख से चिपट कर, अपनी निर्जीव दिनचर्या, शुष्क प्रमाद या जड़ तन्द्रा में विघ्न डालने वाले हर स्पर्श के विरुद्ध चिल्ला पड़ती है। तुम्हारी अन्दर और बाहर की सत्ता का बिना शर्त समर्पण तुम्हारी प्रकृति के सभी भागों में यह नमनीयता ले आयेगा। ऊपर से नीचे प्रवाहित होते हुए प्रज्ञा और प्रकाश, शक्ति, सामञ्जस्य और सौन्दर्य तथा पूर्णता के प्रति हमेशा खुले रहने से तुम्हारे अन्दर हर जगह चेतना जाग उठेगी। यहाँ तक कि शरीर भी सचेतन हो जायेगा और उसकी चेतना पहले की तरह अतिमानसिक, अतिचेतन शक्ति से छिपी न रह कर उसके साथ एक हो जायेगी, उसकी सारी शक्तियों को ऊपर, नीचे और चारों ओर फैलती हुई अनुभव करेगी और वह परम प्रेम और आनन्द की अनुभूति से पुलकित हो उठेगा।

लेकिन सावधान रहो, अपने छोटे से पार्थिव मन से माता को समझने और परखने की कोशिश मत करो क्योंकि यह मन अपने संकुचित तर्क, भूलभरी राय, अपने झगड़ालू, आक्रमणशील अगाध अज्ञान और तुच्छ आत्मविश्वासी ज्ञान के भरोसे अपने से परे की चीज़ों को मापने में मज़ा

लेता है। अपने अर्ध-प्रकाशित अज्ञान की कारा में बन्द मानव मन दिव्य शक्ति के चरणों की बहुमुखी स्वाधीनता का साथ नहीं दे सकता। उनकी दृष्टि और क्रिया की द्रुत गति और जटिलता उसकी लड़खड़ाती समझ को पीछे छोड़ जाती है। माता की गति की लय उसकी लय नहीं है। उनके अनेक और भिन्न व्यक्तित्वों के द्रुत परिवर्तनों से, उनके लयों के निर्माण और छन्दों के भंग से, उनके गति को बढ़ाने और घटाने से, एक या अन्य समस्या पर विचार करने के उनके विभिन्न तरीक़ों में कभी एक और कभी दूसरी पद्धति के ग्रहण करने और त्याग देने और फिर दोनों को मिलाने वाले तरीक़ों से विमूढ़ बना मन अज्ञान के आवर्त में से दिव्य प्रकाश की ओर चक्राकार और वेगपूर्वक उड़ती हुई पराशक्ति की पद्धति को नहीं समझ सकेगा। ज़्यादा अच्छा यह है कि तुम अपनी अन्तरात्मा को उनकी ओर खोलो और अपनी चैत्य दृष्टि के द्वारा अनुभव करके और चैत्य दृष्टि से दर्शन करके तृप्ति-लाभ करो, क्योंकि केवल वे ही दिव्य सत्य को सीधा उत्तर दे सकती हैं। उसके बाद स्वयं माता मन, हृदय, प्राण और भौतिक चेतना में उनके चैत्य तत्त्वों के द्वारा अपनी कार्य-प्रणाली और अपनी प्रकृति को प्रकट कर देंगी।

हमारा अज्ञान-भरा मन सदा यह भूल-भरी माँग करता है कि दिव्य शक्ति हमेशा हमारी सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता-सम्बन्धी उथली और अधकचरी धारणाओं के अनुसार काम करे। इस भूल-भरी माँग से बचते रहो। क्योंकि हमारा मन हर मोड़ पर, अलौकिक शक्ति, सरल सफलता तथा चौंधियाने वाले तेज से चकित होने के लिए शोर मचाता रहता है। ऐसा न हो तो वह इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता कि भगवान् यहाँ मौजूद हैं। माता अविद्या के क्षेत्र में उतर कर अविद्या के साथ जूझ रही हैं, वे इस क्षेत्र में नीचे उतर आयी हैं और पूरी तरह ऊर्ध्वलोक में नहीं हैं। वे अपने ज्ञान और शक्ति को कुछ खोलती और कुछ छिपाती हैं। वे प्रायः उन्हें अपने यन्त्रों और व्यक्तित्वों से रोके रखती हैं और ऐसा रास्ता अपनाती हैं जिससे जिज्ञासु मन का, अभीप्सा करने वाले चैत्य का, युद्धरत प्राण का, कारागार में बन्द, कष्ट पाती हुई भौतिक प्रकृति का उनके अपने-अपने ढंग से रूपान्तर कर सकें। कुछ ऐसी शर्तें हैं जिन्हें परमोच्च संकल्प ने निर्धारित किया है, बहुत-सी उलझी हुई गाँठें हैं जिन्हें सहसा काट कर अलग नहीं

किया जा सकता, उन्हें धीरे-धीरे ढीला करना होगा। इस विकास करती हुई धरती पर असुर और राक्षस क़ब्ज़ा किये हुए हैं। उनकी चिरकाल से जीती हुई जागीर में, उनके प्रदेश में उन्हीं की शर्तों के अनुसार उनका सामना करना और उन्हें जीतना है। हमें अपने अन्दर स्थित मानव को ठीक राह दिखा कर अपनी सीमाओं को लाँघने के लिए तैयार करना है। वह इतना कमज़ोर और अज्ञान से भरा है कि उसे अचानक अपने से बहुत दूर के दिव्य स्वरूप में नहीं उठाया जा सकता। भागवत 'चेतना' और 'शक्ति' यहाँ उपस्थित हैं और श्रम की परिस्थितियों में हर क्षण जो आवश्यक है वह करती रहती हैं, अपूर्णताओं के बीच आने वाली पूर्णता को आकार देने के लिए भगवान् के बताये क़दम उठाती रहती हैं। लेकिन तुम्हारे अन्दर अतिमानस के उतरने पर ही माता तुम्हारे साथ सीधी अतिमानस-शक्ति के रूप में अतिमानस-प्रकृति के अनुसार काम कर सकती हैं। अगर तुम मन के पीछे चलो तो माता के सामने प्रकट होने पर भी तुम उन्हें पहचान न सकोगे। अपनी अन्तरात्मा का अनुसरण करो, मन का नहीं, अपनी उस अन्तरात्मा का जो सत्य को प्रत्युत्तर देती है, उस मन का नहीं जो बाहरी रूपों पर कूदता है। दिव्य शक्ति पर विश्वास करो और वह तुम्हारे अन्दर के भागवत तत्त्वों को मुक्त कर देगी और उन सबको एक दिव्य प्रकृति की अभिव्यक्ति बना देगी। CWSA खण्ड ३२, पृ. २५-२६

सम्पूर्ण आत्म-दान

पूरी तरह से उद्घाटित, शुद्ध तथा पवित्र

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

अतिमानसिक परिवर्तन

धरती की चेतना के विकास-क्रम में अतिमानसिक परिवर्तन अवश्यम्भावी है क्योंकि अभी तक उसका ऊर्ध्वारोहण समाप्त नहीं हुआ है और मन उसकी आख़िरी चोटी नहीं है। लेकिन उस परिवर्तन के आने, स्वरूप धारण करने, स्थिर होने के लिए नीचे से पुकार के साथ उसे पहचानने का और उससे इन्कार न करने का संकल्प होना चाहिये और साथ ही ऊपर से परम पुरुष की स्वीकृति भी होनी चाहिये। जो शक्ति पुकार और स्वीकृति के बीच में मध्यस्थता करती है वह है दिव्य माता की उपस्थिति और शक्ति। मनुष्य का कोई भी प्रयास या तपस्या नहीं, केवल माता की शक्ति ही ढक्कन तोड़ कर, आवरण को छिन्न-भिन्न करके पात्र को ठीक रूप दे सकती है और अन्धकार, मिथ्यात्व और मृत्यु और दुःख से भरे इस जगत् में सत्य और ज्योति और दिव्य जीवन और अमर आनन्द ला सकती है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. २६ **श्रीअरविन्द**

अतिमानसिक अभिव्यक्ति

इसका स्वागत होगा

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

बारह गुण

पिछली बार मैंने तुमसे कहा था कि मैंने बारह गुणों के बारे में जिस पर्चे पर लिखा था उसे खोज रही थी। *(श्रीमाँ एक काग़ज़ निकालती हैं)* लो यह रहा वह, किसी ने मेरे लिए ढूँढ़ लिया इसे।

१. सच्चाई-निष्कपटता	२. विनम्रता	३. कृतज्ञता	४. अध्यवसाय
५. अभीप्सा	६. ग्रहणशीलता	७. प्रगति	८. साहस
९. अच्छाई	१०. उदारता	११. समता	१२. शान्ति

पहले आठ गुण प्रभु के प्रति व्यक्ति के मनोभाव से सम्बन्ध रखते हैं और अन्तिम चार मानवता के प्रति व्यक्ति के मनोभाव से।

१९ जनवरी १९७२ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

संख्याओं के गभीरतर अर्थ मैंने 'तेमसेम' में जाने जब मैं बहुधा अधिमानस-जगत् में रहती थी। मुझे याद नहीं कि महाशय तेओं उन विभिन्न जगतों के क्या नाम दिया करते थे, लेकिन वह वह जगत् था जो श्रीअरविन्द के अधिमानस-जगत् के उच्चतम और उज्ज्वलतम क्षेत्रों से मेल खाता था। वह ऊपर था, भागवत क्षेत्र के ठीक ऊपर। और वह अधिमानसिक सृष्टिके साथ समस्वर था—भगवान् के प्रभाव-तले पृथ्वी। वहीं संख्याओं ने मेरे लिए जीवन्त अर्थ ले लिया था—वह कोई मानसिक अटकलबाज़ी नहीं थी—सचमुच उनमें जीवन्त अर्थ था। मादाम तेओं ने तब मुझे पहचाना, क्योंकि उन्होंने मेरे सिर के ऊपर बारह मोतियों की एक रचना देखी; और उन्होंने मुझसे कहा, "आप विशेष इसलिए हैं क्योंकि आपके पास यह है। जिनके पास यह रचना होती है केवल वे ही इस तरह के हो सकते हैं!"

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से

बारह गुण :

सच्चाई-निष्कपटता

पहली बात है, अपने-आपको धोखा न देना। व्यक्ति जानता है कि भगवान् को धोखा नहीं दिया जा सकता; असुरों में सबसे चतुर भी भगवान् को धोखा नहीं दे सकता। यह सब समझ लेने के बाद भी, हम देखते हैं कि व्यक्ति बहुधा अपने जीवन में दिन-भर बिना जाने, निरायास, लगभग यन्त्रवत् अपने-आपको धोखा देने की कोशिश करता है। व्यक्ति जो कुछ करता है उसकी, अपने शब्दों की और अपनी क्रियाओं की हमेशा ही अनुकूल व्याख्या कर लेता है। पहले यही होता है। मैं यहाँ स्पष्ट दीखने वाली चीज़ों की बात नहीं कर रही, जैसे लड़-झगड़ कर आदमी कहता है : "यह दूसरे का दोष है।" मैं दैनिक जीवन की छोटी-छोटी चीज़ों की बात कर रही हूँ।

मैं एक बच्चे को जानती हूँ जो एक दरवाज़े से टकरा गया और फिर उसने दरवाज़े को एक अच्छी-सी लात जमायी! बात यही है। हमेशा ग़लती दूसरे की होती है, दूसरा ही भूलें करता है। बचपन की अवस्था पार कर लेने के बाद भी, जब तुम्हारे अन्दर तर्क-बुद्धि आ जाती है, तुम बहुत मूर्खतापूर्ण बहाने बनाते हो : "अगर उसने यह न किया होता तो मैं ऐसा न करता।" लेकिन बात इससे ठीक उलटी होनी चाहिये!

मैं इसी को सच्चा या निष्कपट होना कहती हूँ। जब तुम किसी के साथ हो और निष्कपट हो, तो तुरन्त तुम्हारी प्रतिक्रिया यही होनी चाहिये कि तुम ठीक चीज़ करो, भले तुम जिसके साथ हो वह ठीक चीज़ न भी करे। सबसे सामान्य उदाहरण ले लो : कोई नाराज़ होता है, उसे चोट पहुँचाने वाली बातें कहने की जगह तुम चुप रहते हो, स्थिर और शान्त रहते हो। तुम्हें उसके ग़ुस्से की छूत नहीं लगती। ज़रा अपनी ओर देखने से ही तुम्हें पता लग जायेगा कि यह आसान है या नहीं। यह बिलकुल प्रारम्भिक चीज़ है। यह जानने के लिए कि तुम सच्चे और निष्कपट हो या नहीं, बहुत-ही छोटा-सा आरम्भ है। और मैं उन लोगों की बात नहीं कर रही जो हर छूत के, यहाँ तक कि भद्दे मज़ाकों के भी शिकार हो जाते हैं; मैं उनकी बात भी नहीं कर रही जो वही मूर्खता करते हैं जो दूसरे करते हैं।

मैं तुमसे कहती हूँ : अगर तुम अपने-आपको पैनी दृष्टि से टटोलो तो तुम अपने सामान्य मनोभाव में निष्कपट होने की कोशिश करते हुए भी अपने अन्दर सैकड़ों कपट और कुटिलताएँ देखोगे। तुम देखोगे कि यह कितना कठिन है। **'श्रीमातृवाणी'** खण्ड ५, पृ. ६-७

पूर्णतः सच्चा होने के लिए यह आवश्यक है कि कोई पसन्दगी, कोई कामना, कोई आकर्षण, कोई नापसन्दगी, कोई सहानुभूति या विद्वेष, कोई आसक्ति, कोई विकर्षण न हो। हमें वस्तुओं का एक पूर्ण, सर्वांगीण अन्तर्दर्शन प्राप्त हो जिसमें प्रत्येक वस्तु अपने स्थान पर हो और सभी वस्तुओं के प्रति हमारा एक ही मनोभाव हो : सत्य-दर्शन का मनोभाव।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ८, पृ. ४७४

सच्चाई का अर्थ है, सत्ता की सभी गतिविधियों को अभी तक प्राप्त उच्चतम चेतना और उपलब्धि तक उठाना।

सच्चाई समस्त सत्ता के सभी भागों और क्रिया-कलापों को केन्द्रीय 'भागवत इच्छा' के चारों ओर एक और समस्वर करने की माँग करती है।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १४, पृ. ७१

जब कभी तुम्हारे अन्दर सच्चाई होती है तब तुम देखते हो कि सहायता, पथ-प्रदर्शन, कृपा-शक्ति सर्वदा तुम्हें उत्तर देने के लिए मौजूद हैं और तुम फिर जल्दी ही अपनी भूल सुधार लेते हो।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ३, पृ. २०५

सरल निष्कपटता

समस्त प्रगति का आरम्भ

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

विनम्रता

एक बात है जो हमेशा कही गयी है, लेकिन हमेशा ग़लत समझी गयी है, यह है नम्रता की आवश्यकता। हम उसे बुरी तरह लेते हैं, बुरी तरह समझते हैं, और बुरी तरह उसका उपयोग करते हैं। नम्र बनो, यदि तुम ठीक ढंग से नम्र बन सकते हो; सबसे बड़ी बात है ग़लत तरीक़े से नम्र मत बनो, क्योंकि यह तुम्हें कहीं नहीं पहुँचाता। लेकिन एक बात है : अगर तुम अपने अन्दर से इस जंगली घास को—जिसे मिथ्याभिमान कहते हैं—खींच कर बाहर कर सको तो वास्तव में तुमने कुछ काम किया। काश, तुम्हें मालूम होता कि यह कितना कठिन है! तुम (बिना जाने ही) मिथ्याभिमान के बिना, अन्दर से सन्तुष्ट होकर फूले बिना, कोई चीज़ ठीक तरह नहीं कर सकते, कोई अच्छा विचार नहीं कर सकते, कोई सच्ची गति नहीं कर सकते, थोड़ी-सी प्रगति नहीं कर सकते। और तब तुम ज़ोर से हथौड़े बरसा कर इसे तोड़ने के लिए बाधित होते हो। फिर भी टूटे टुकड़े बचे रहते हैं और फिर से अंकुरित होने लगते हैं। इस रूखड़ी को जड़ से उखाड़ने के लिए तुम्हें जन्म-भर काम करना पड़ता है। यह बार-बार निकल आती है और इतने छिपे रूप में उगती है कि तुम मान बैठते हो कि अब यह चली गयी। तुम अपने-आपको बहुत विनम्र मान कर कहते हो : "यह मैंने नहीं किया। मुझे लगता है कि यह भगवान् ने किया है। भगवान् न हों तो मैं कुछ भी नहीं हूँ," और अगले ही क्षण, ऐसी बात सोचने के लिए तुम अपने-आपसे बहुत सन्तुष्ट हो जाते हो!

विनम्र होने का ठीक और ग़लत तरीक़ा क्या है?

यह बहुत सरल है। जब लोगों से विनम्र होने के लिए कहा जाता है तो वे तुरन्त "दूसरे लोगों के सामने नम्र" होने की बात सोच लेते हैं, यह नम्रता ग़लत है। सच्ची नम्रता भगवान् के प्रति नम्रता है। यानी, एक यथार्थ, ठीक-ठीक, **जीता-जागता** भाव कि हम भगवान् के बिना कुछ भी नहीं हैं, कुछ भी नहीं कर सकते और कुछ भी नहीं समझ सकते, कि अगर हम बहुत ही अधिक तथा विरल रूप में, बुद्धिमान् हैं फिर भी यह भागवत 'चेतना'

के सामने कुछ भी नहीं है। और यह भाव हमेशा बना रहना चाहिये क्योंकि तब ग्रहणशीलता का सच्चा भाव हमेशा बना रह सकता है—एक ऐसी विनम्र ग्रहणशीलता का जो भगवान् के सामने व्यक्तिगत आत्म-प्रदर्शन नहीं करती।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ५, पृ. ५०-५१

माँ, जब हम प्रयास करते हैं तो हमारे अन्दर कोई चीज़ बहुत ज़्यादा आत्म-तुष्ट हो जाती है, शेखी बघारती है और अपने प्रयास से सन्तुष्ट हो जाती है और इससे सब कुछ बिगड़ जाता है। तो हम इससे कैसे पिण्ड छुड़ा सकते हैं?

आह, यह वह है जो देखा करता है कि तुम क्या कर रहे हो! जब तुम कुछ करते हो तो हमेशा कोई उसे देखता रहता है। तो कभी-कभी, वह गर्व से फूल उठता है। स्पष्ट है कि गर्व प्रयास में से बहुत सारे बल को खींच लेता है। मेरा ख़याल है कि यह वही चीज़ है : यह अपने-आपको कार्य करते हुए, अपने-आपको जीते हुए देखने की आदत है। अपने-आपका अवलोकन ज़रूरी है, लेकिन मेरा ख़याल है कि पूरी तरह सच्चा और सहज होना उससे भी ज़्यादा ज़रूरी है, तुम जो कुछ करो उसमें बहुत ज़्यादा सहज-स्वाभाविक होओ : हमेशा अपने-आपको काम करते हुए देखते न रहो और अपने-आपकी परख—कभी-कभी कड़ाई के साथ परख—न करते रहो। वास्तव में, यह लगभग उतना ही बुरा है जितना सन्तोष के साथ अपने-आपको शाबाशी देना। दोनों चीज़ें समान रूप से बुरी हैं। तुम्हें अपनी अभीप्सा में इतना सच्चा होना चाहिये कि तुम्हें पता भी न चले कि तुम अभीप्सा कर रहे हो, तुम स्वयं अभीप्सा बन जाओ।...

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ६, पृ. ४५३

विनम्रता (दूर्बा)

अपनी सफलता में प्रशंसनीय

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

कृतज्ञता

... एक दूसरी क्रिया है जो भक्ति के साथ निरन्तर बनी रहनी चाहिये...। इस प्रकार की कृतज्ञता का भाव कि भगवान् का अस्तित्व है; चमत्कारपूर्ण कृतज्ञता की यह भावना जो वास्तव में इस तथ्य के कारण ही तुम्हें महान् हर्ष से भर देती है कि भगवान् हैं, विश्व में कोई वस्तु है जो भगवान् है, ठीक वह भयंकरता ही नहीं है जिसे हम देखते हैं, भगवान् हैं, भगवान् विद्यमान हैं। और जब-जब अत्यन्त मामूली चीज़ भी तुम्हें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में, दिव्य सत्ता के इस उच्च 'सत्य' के सम्पर्क में ला देती है, तुम्हारा हृदय इतने तीव्र, इतने अलौकिक हर्ष से, एक ऐसी कृतज्ञता से भर जाता है जिसमें मानों अन्य सब चीज़ों की अपेक्षा सबसे अधिक आनन्दपूर्ण रस होता है।

ऐसी कोई चीज़ नहीं जो तुम्हें कृतज्ञता से प्राप्त हर्ष के समान हर्ष प्रदान करे। हम एक पक्षी को गाते हुए सुनते हैं, एक सुन्दर-सा पुष्प देखते हैं, एक नन्हें से बच्चे को निहारते हैं, उदारता के एक कार्य की ओर दृष्टिपात करते हैं, एक आकर्षक वाक्य पढ़ते हैं, अस्तोन्मुख रवि को देखते हैं, इसका महत्त्व नहीं कि वह क्या चीज़ है, एकाएक यह चीज़ तुम्हें अभिभूत कर देती है, इस प्रकार का भावातिरेक—निस्सन्देह, इतना गभीर, इतना तीव्र—कि संसार भगवान् को अभिव्यक्त कर रहा है, कि जगत् के पीछे कोई वस्तु है जो भगवान् है। **'श्रीमातृवाणी'** खण्ड ८, पृ. ४८-४९

... बहुत ही कम लोग हैं, बहुत ही कम, उनकी संख्या न के बराबर है, जो सच्ची धार्मिक भावना के साथ गिरजाघर या मन्दिर जाते हैं, यानी, किसी चीज़ के लिए प्रार्थना करने या भगवान् से कुछ माँगने के लिए नहीं, बल्कि अपने-आपको समर्पित करने, कृतज्ञता प्रकट करने, अभीप्सा और आत्म-समर्पण करने के लिए जाते हैं। ऐसा करने वाला मुश्किल से लाखों में एक होता है। **'श्रीमातृवाणी'** खण्ड ६, पृ. २२२-२३

कृतज्ञ होना, परम प्रभु की इस अनुपम कृपा को कभी न भूलना जो हर एक को, उसके अज्ञान और ग़लतफ़हमियों के बावजूद, अहंकार, उसके विरोधों और विद्रोहों के बावजूद, प्रत्येक व्यक्ति को छोटे-से-छोटे रास्ते से

उसके भागवत लक्ष्य की ओर ले जाती है।

हमेशा हमारे हृदय में कृतज्ञता की ऊष्माभरी, मधुर और उज्ज्वल पवित्र लौ जलती रहनी चाहिये ताकि वह सारे अहंकार और समस्त अन्धकार को विलीन कर दे; परम प्रभु की उस 'कृपा' के लिए कृतज्ञता की लौ जो साधक को उसके लक्ष्य की ओर बढ़ाये लिये जाती है—और जितना अधिक वह कृतज्ञ होगा, 'कृपा' के इस कार्य को समझेगा और उसके लिए धन्यवाद से भर उठेगा, उतना अधिक मार्ग छोटा होगा।

"White Roses" (२६-६-१९६४ का सन्देश)

... सभी गतियों में, जो शायद सबसे अधिक हर्ष प्रदान करती है—जो अमिश्रित आनन्द देती है, जो अहंकार से दूषित नहीं होती—वह है सहज कृतज्ञता। यह बहुत ही विशेष वस्तु है। यह प्रेम नहीं है, यह आत्मदान नहीं है। यह बहुत **पूर्ण** हर्ष है। लबालब हर्ष।

यह बहुत ही विशेष स्पन्दन होता है, इसके जैसा और कोई स्पन्दन नहीं, यह अपने-आपमें पूर्ण है। यह ऐसी वस्तु है जो तुम्हें विशाल बना देती है, तुम्हें आकण्ठ भर देती है, कितना उत्साहपूर्ण होता है यह स्पन्दन! मानव चेतना की पहुँच के अन्दर जितनी गतियाँ हैं, निश्चित रूप से यह ऐसी गति है जो तुम्हें अहंकार से अधिक-से-अधिक बाहर निकाल लाती है।...

जब तुम इस स्पन्दन की पवित्रता में इसके अन्दर प्रवेश कर सको तो तुम्हें तुरन्त यह ज्ञान हो जाता है कि इसमें 'प्रेम' के स्पन्दन के समान गुण होता है : यह दिशा से बँधा नहीं होता... अन्ततः, कृतज्ञता में बस 'प्रेम' के तात्त्विक स्पन्दन की बहुत हलकी रंगीन आभा होती है।

२१ दिसम्बर १९६३ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

कृतज्ञता

तुम्हीं सभी बन्द द्वारों को खोल देती
और रक्षण करने वाली भागवत कृपा को
अन्दर प्रवेश करने देती हो
(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का
आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

अध्यवसाय

... सबसे बढ़ कर आवश्यक गुण है लगन, सहिष्णुता, और... उसे क्या नाम दें?—एक प्रकार का आन्तरिक प्रसन्न भाव जो निरुत्साहित न होने में, उदास न होने में और मुस्कुराहट के साथ सभी कठिनाइयों का सामना करने में तुम्हारा सहायक होता है। अंग्रेज़ी में एक शब्द है जो इस भाव को अच्छी तरह व्यक्त करता है और वह है 'चियरफ़ुलनेस' (Cheerfulness) —प्रसन्नचित्तता। यदि तुम इसे अपने अन्दर बनाये रखो तो तुम उन सब बुरे प्रभावों के साथ, जो तुम्हें प्रगति करने से रोकने का प्रयास करते हैं, प्रकाश के अन्दर, बहुत अच्छे तरीक़े से लड़ सकते हो, उनका अधिक अच्छी तरह से विरोध कर सकते हो।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ८, पृ. २८

हर एक को अपनी निश्चिति अपने ही अन्दर खोजनी चाहिये, सब चीज़ों के बावजूद इसे बनाये, सम्भाले रखना चाहिये और किसी भी क़ीमत पर लक्ष्य तक बढ़ते जाना चाहिये। 'विजय' उसी की होती है जो अन्त तक डटा रहता है।

सब विरोधों के होते हुए अपनी सहन-शक्ति बनाये रखने के लिए हमारे सहारे का आधार अचल-अटल होना चाहिये, और **एक ही** सहारा अचल-अटल है, वह है 'सत्' का, 'परम सत्य' का सहारा। किसी और को खोजना बेकार है। केवल यही है जो कभी साथ नहीं छोड़ता।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ९, पृ. २८४

... यदि तुम हतोत्साह हुए बिना और प्रयास छोड़े बिना, क्योंकि वह अत्यन्त कठिन है, कठिनाइयों का सामना करने में समर्थ नहीं हो; और यदि तुम असमर्थ... हाँ, आघातों को ग्रहण करने और फिर भी प्रयास जारी रखने में, आघातों को, जैसा कि कहा जाता है, "पी जाने" में—अपने दोषों के फलस्वरूप जब आघात पाते हो, उन्हें पी जाने और निरुत्साह हुए बिना आगे बढ़ना जारी रखने में—असमर्थ होते हो, तो तुम बहुत दूर तक आगे नहीं जाते; प्रथम मोड़ पर ही, जहाँ तुम्हारा तुच्छ अभ्यस्त जीवन आँख से

ओझल हो जाता है, तुम निराशा में जा गिरते हो और प्रयास छोड़ बैठते हो। इसका रूप... इसे कैसे कहा जाये? इसका अत्यन्त स्थूल रूप है अध्यवसाय। जब तक तुम एक ही चीज़ को, जब ज़रूरत हो, हज़ारों बार फिर-फिर आरम्भ करने का संकल्प न करो...। जानते हो, लोग निराश होकर मेरे पास आते हैं और कहते हैं : "मैंने तो समझा था कि यह हो चुका, पर मुझे फिर से आरम्भ करना होगा!" और यदि उनसे कहा जाता है : "परन्तु यह तो कुछ नहीं, तुम्हें शायद फिर से सौ बार, दो सौ बार, हज़ार बार प्रारम्भ करना होगा; तुम एक पग आगे बढ़ते हो और समझते हो कि सुरक्षित हो गये, परन्तु सर्वदा कोई चीज़ बनी रहेगी जो उसी कठिनाई को थोड़े दिन बाद वापस ले आयेगी। तुम समझते हो कि तुमने समस्या हल कर ली, तुम्हें उसे फिर एक बार हल करना होगा; वह तुम्हारे सामने ऐसे उपस्थित होगी जो देखने में तो ज़रा भिन्न होगी, पर होगी वही समस्या", और यदि तुमने निश्चय नहीं किया है कि : "यदि वह लाखों बार वापस आये फिर भी मैं उसे लाखों बार हल करूँगा, पर इसे समाप्त करके ही छोड़ूँगा", तो हाँ, तुम योग नहीं कर सकोगे। यह एकदम अपरिहार्य है।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ८, पृ. ५०

अध्यवसाय द्वारा ही व्यक्ति कठिनाइयों को जीत सकता है, उनसे भाग कर नहीं। जो डटा रहे उसका जीतना निश्चित है। विजय सबसे अधिक सहनशील को प्राप्त होती है। हमेशा अपना अच्छे-से-अच्छा करो और परिणामों को भगवान् देख लेंगे।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १४, पृ. १८०

अध्यवसाय

एकदम अन्त तक जाने का निश्चय

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

अभीप्सा

यह (अभीप्सा) है उच्चतर वस्तुओं के लिए—भगवान् के लिए—सत्ता का आह्वान, क्योंकि सभी कुछ उच्चतर या 'भागवत चेतना' का ही है।

*

अभीप्सा कामना का रूप नहीं, बल्कि अन्तरस्थ आत्मा की आवश्यकता होनी चाहिये, और होनी चाहिये नीरव-निश्चल इच्छा जो भगवान् की ओर मुड़ी हो और उन्हीं की खोज में जुटी हो।

CWSA खण्ड २९, पृ. ५६, ६०-६१

आदर्श साधक को बाइबल की भाषा में कह सकना चाहिये, "प्रभु के लिए मेरे उत्साह ने मुझे लील लिया है।" प्रभु के लिए यह *उत्साह*, समस्त सत्ता की यह *व्याकुलता*—भगवान् को पाने के लिए हृदय की यह उत्कण्ठा, —यही अहंकार को विलीन कर देती और उसके नगण्य और सँकरे साँचे को तोड़ देती है ताकि साधक उस वस्तु के पूरे विस्तार में प्रवेश कर ले जिसकी वह खोज कर रहा है, उसकी जो वैश्व है, जो सब कुछ का अतिक्रमण कर लेती है, और चूँकि वह परात्पर है इसलिए बृहत्तम और उच्चतम वैयक्तिक आत्मा और प्रकृति को भी पार कर जाती है।

CWSA खण्ड २३, पृ. ५८

मनुष्य के अन्दर आध्यात्मिक अभीप्सा जन्मजात होती है; पशु से भिन्न, वह अपनी अपूर्णताओं और सीमाओं को जानता है और अनुभव करता है कि वह अभी जो है उससे परे की किसी चीज़ को उसे पाना है...

जड़-भौतिक में प्रगतिशील चिन्तक मन के प्रकट होने तक क्रम-विकास पर प्रभाव पड़ा है, लेकिन वह पड़ा है प्रकृति की यान्त्रिक क्रियावली द्वारा, यानी अवचेतन या अन्तस्तलीय रूप में—क्योंकि उसमें अपने-आपको जानने की अभीप्सा, आशय, संकल्प या किसी सत्ता की खोज नहीं थी... मनुष्य जब आया तो उसने देखा कि उसकी चेतना से ऊँची चेतना की एक स्थिति हो सकती है; उसके मन और प्राण में क्रम-विकासात्मक उद्दीपन है, उसके अन्दर अपना अतिक्रमण करने की अभीप्सा है जो स्पष्ट रूप से दृष्टि गोचर है और उसमें बसी हुई है...। CWSA खण्ड २२, पृ. ८७५-७६

शब्दों के परे, विचारों के ऊपर तीव्र अभीप्सा की ज्वाला को हमेशा निष्कम्प और उज्ज्वल होकर जलते रहना चाहिये।

*

सच्ची अभीप्सा का ठीक-ठीक अर्थ क्या है?

ऐसी अभीप्सा जिसमें किन्हीं पक्षपातभरे और अहंकारपूर्ण हिसाब-किताब का मिश्रण न हो। **'श्रीमातृवाणी'** खण्ड १४, पृ. ८१, ७९

अगर तुम सचेतन अभीप्सा की अवस्था में हो, बहुत सच्चे हो तो बस, तुम्हारे आस-पास की सभी चीज़ें, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, अभीप्सा में मदद करने के लिए सुव्यवस्थित कर दी जायेंगी, यानी, या तो तुमसे प्रगति करवाने के लिए, किसी नयी चीज़ के सम्पर्क में लाने के लिए, या फिर तुम्हारे स्वभाव में से किसी ऐसी चीज़ को उखाड़ फेंकने में तुम्हारी मदद करेंगी जिसे विलुप्त हो जाना चाहिये। यह काफ़ी अद्‌भुत है। अगर तुम सचमुच अभीप्सा की तीव्रता की अवस्था में होओ तो ऐसी कोई परिस्थिति नहीं जो इस अभीप्सा को चरितार्थ करने के लिए तुम्हारी सहायता करने न आये। हर चीज़ मदद करने आती है, हर चीज़, मानों कोई ऐसी पूर्ण और निरपेक्ष चेतना विद्यमान है जो तुम्हारे चारों ओर सभी चीज़ों को संगठित कर रही है।...

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ६, पृ. २०१

अभीप्सा

असंख्य, दुराग्रही, अपने-आप को बिना थके दोहराती रहती है।

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

ग्रहणशीलता

इस उद्घाटन का अर्थ है, अपनी प्रगति के सभी हिस्सों को, सभी स्तरों पर, पूरे विस्तार के साथ असीम रूप से उस भागवत परम चेतना को ग्रहण करने के लिए उद्घाटित कर देना जो पहले से ही हमारे ऊपर और पीछे स्थित है और जो इस मर्त्य अर्ध-सचेतन अस्तित्व को अपने आलिंगन में लिये हुए है।

CWSA खण्ड १२, पृ. १६९ **श्रीअरविन्द**

मेरा प्रेम हमेशा तुम्हारे साथ है; तो अगर तुम उसे अनुभव न करो तो इसका अर्थ है कि तुम उसे ग्रहण करने में समर्थ नहीं हो। यह तुम्हारी ग्रहणशीलता की कमी है और ग्रहणशीलता को बढ़ाना चाहिये; इसके लिए तुम्हें अपने-आपको खोलना चाहिये और तुम अपने-आपको तभी खोलते हो जब **अपने-आपको** देते हो। निश्चय ही तुम 'भागवत प्रेम' और शक्तियों को न्यूनाधिक सचेतन रूप से अपनी ओर खींचने का प्रयास कर रहे हो। यह तरीक़ा बुरा है। बिना लेखा-जोखा किये, बदले में किसी चीज़ की आशा किये बिना अपने-आपको दे दो, तब तुम पाने में समर्थ होओगे।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १४, पृ. १६२

अग्नि को जलाना तुम्हारा काम नहीं। जैसा कि मैंने तुमसे कहा, मैं उसे हमेशा प्रज्वलित कर रही हूँ—तुम्हें उसे पाने के लिए बस अपने-आपको खोलना और अपनी सद्भावना के साथ उसकी रक्षा करनी है।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १७, पृ. २०९

माँ, ग्रहणशीलता किस बात पर निर्भर करती है?

इसका पहला आधार है सच्चाई—व्यक्ति सचमुच ग्रहण करना चाहता है या नहीं—और फिर... हाँ, मेरे विचार में इसके लिए मुख्य वस्तुएँ हैं सच्चाई और नम्रता। जितना घमण्ड तुम्हारे हृदय के द्वार बन्द कर देता है उतना कोई और वस्तु नहीं करती। जब तुम अपने में सन्तुष्ट रहते हो, तो यह तुम्हारे अन्दर का अहं ही होता है जो तुम्हें यह मानने ही नहीं देता कि

तुम्हारे अन्दर भी कोई कमी है, कि तुम भी ग़लतियाँ करते हो, कि तुम भी अधूरे हो, अपूर्ण हो, कि तुम... जानते हो, तुम्हारी प्रकृति में कोई ऐसी चीज़ मौजूद है जो इस प्रकार कठोर पड़ जाती है, जो अपना दोष स्वीकार करना नहीं चाहती—यही चीज़ तुम्हें उच्चतर वस्तु को ग्रहण करने से रोकती है। बहरहाल, इस अनुभव को प्राप्त करने के लिए तुम कोशिश कर सकते हो। यदि तुम संकल्प-शक्ति के बल पर अपनी सत्ता के एक छोटे-से भाग से भी यह कहलवा सको कि "ओह, हाँ, हाँ, यह मेरी भूल थी, मुझे ऐसा नहीं होना चाहिये था, मुझे ऐसा करना और सोचना नहीं चाहिये था, हाँ, यह मेरा दोष है", यदि तुम उससे यह स्वीकार करा सको तो शुरू-शुरू में तो, जैसा कि मैंने अभी-अभी कहा, तुम्हें इससे कष्ट होगा, पर यदि तुम इस पर अड़े रहो, जब तक कि वह पूरी तरह स्वीकृत न हो जाये, तो वह भाग तत्काल ही खुल जायेगा—वह खुल जायेगा और प्रकाश का पुञ्ज उसके अन्दर प्रवेश कर जायेगा, और तब तुम बाद में इतने प्रसन्न और आनन्दित हो उठोगे कि तुम अपने से पूछोगे: "आख़िर क्यों, मैं इतने समय तक इसका प्रतिरोध कर रहा था? कैसा मूर्ख था मैं!"

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ६, पृ. १३३-३४

ग्रहणशीलता

'भागवत संकल्प' के प्रति सचेतन तथा उसे समर्पित

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

प्रगति

... मानव-जीवन का अनिवार्य और वाञ्छनीय धर्म है, प्रगति; कोई अचल स्थिति नहीं। वस्तुतः इसका यह अर्थ भी नहीं है कि वह हमेशा नूतनताओं के पीछे हाँफ़ता-काँपता भागता रहे, बल्कि आत्मा के महान् से महानतर सत्यों की ओर निरन्तर बढ़ता चले, केवल अपने ही व्यक्तिगत जीवन में नहीं, बल्कि सामूहिक जीवन में भी रस ले। सामुदायिक प्रयत्नों और समाज के झुकावों, आदर्शों और संस्कारों, पूर्णता के प्रति समाज के प्रयासों में भी भाग ले। CWSA खण्ड २५, पृ. १७५

आन्तरिक प्रगति की पहली शर्त है, तुम्हारी प्रकृति के किसी भी भाग में जो भी ग़लत गतिविधि या क्रिया हो, उसे स्वीकार कर लेना—वह ग़लत विचार, ग़लत भावना, ग़लत वाणी, ग़लत क्रिया—कुछ भी हो सकती है। और ग़लत का अर्थ है—जो कुछ सत्य, उच्चतर चेतना और उच्चतर आत्मा, भगवान् के पथ से हट जाये। एक बार उस ग़लत गतिविधि को पहचान लो तो स्वीकार कर लो, उस पर लीपा-पोती मत करो, अपनी सफ़ाई मत दो,—उसे परम प्रभु को समर्पित कर दो कि उनका 'प्रकाश' और उनकी 'कृपा' उतर कर उसके स्थान पर सत्य-'चेतना' की उचित क्रिया को प्रतिष्ठित कर दें।

CWSA खण्ड २९, पृ. १३१ **श्रीअरविन्द**

प्रगति सृष्टि में भागवत प्रभाव का चिह्न है।

*

पार्थिव जीवन का उद्देश्य है प्रगति। अगर तुम प्रगति करना बन्द कर दो तो तुम मर जाओगे। प्रत्येक क्षण जो तुम प्रगति किये बिना गुज़ारते हो तुम्हारी क़ब्र की ओर एक और क़दम होता है।

*

जिस क्षण तुम सन्तुष्ट हो जाते हो और किसी चीज़ के लिए अभीप्सा नहीं करते, तुम मरना शुरू कर देते हो। जीवन गति है, जीवन प्रयास है, वह

आगे कूच कर रहा है, भावी अन्तःप्रकाशों और उपलब्धियों की ओर चढ़ रहा है। आराम करना चाहने से बढ़ कर ख़तरनाक और कुछ नहीं है।

*

तुम्हें हमेशा कुछ सीखना होता है, कुछ प्रगति करनी होती है और हर स्थिति में हम सीखने और प्रगति करने का अवसर पा सकते हैं।

*

प्रगति : हर क्षण मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए जो कुछ तुम हो और जो कुछ तुम्हारे पास है उसे छोड़ने के लिए तैयार रहना।

*

सच्ची प्रगति है हमेशा 'भगवान्' के अधिक निकट आना।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १५, पृ. ८३, ८५

प्रगति (सदाबहार)

वह कारण जिसके लिए हम धरती पर हैं

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

साहस

... भय एक प्रकार की अपवित्रता है, सबसे बड़ी अपवित्रताओं में से एक है, उनमें से एक जो सीधे उन भगवद्विरोधी शक्तियों से आती हैं जो पृथ्वी पर भागवत कार्य को नष्ट कर देना चाहती हैं; और जो लोग सचमुच योग करना चाहते हैं उनका सबसे पहला कर्तव्य है—अपनी सारी शक्ति, सारी सच्चाई तथा जितनी सहिष्णुता वे धारण कर सकें उस सबके साथ अपनी चेतना में से भय की छाया तक को निकाल फेंकना। मार्ग पर चलने के लिए हमें निर्भीक होना होगा, और कभी उस क्षुद्र, तुच्छ, दुर्बल, निकृष्ट, अपनी ही ओर सिकुड़ जाने के भाव को, जो कि भय है, प्रश्रय नहीं देना चाहिये। एक अदम्य साहस, एक पूर्ण निष्ठा और आत्मदान, जो इतना सच्चा हो कि मनुष्य न तो हिसाब लगाये, न मोल-तोल करे, पाने की भावना से न दे, संरक्षण पाने की भावना से निर्भरशील न हो—ऐसी श्रद्धा न रखे जो प्रमाण माँगती हो—बस, यही चीज़ पथ पर चलने के लिए अनिवार्य है, और बस यही चीज़ है जो वास्तव में तुम्हें सभी ख़तरों में सुरक्षा प्रदान कर सकती है।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ८, पृ. ३१४-१५

सर्वांगीण साहस : चाहे कोई क्षेत्र हो, चाहे जो संकट हो, मनोवृत्ति एक ही रहती है—स्थिर और आश्वस्त।

जिस किसी में साहस है वह औरों को साहस दे सकता है, जैसे दीये की ज्योति दूसरे दीये को जला सकती है।

अपने दोषों को पहचानना श्रेष्ठतम साहस है।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १४, पृ. १८७, १८८-८९

मुझे याद है कि एक बार हमने एक परिपूर्णता के रूप में साहस की चर्चा की थी... परन्तु यह एक ऐसा साहस है जिसमें एक सर्वोच्च साहसिक कार्य का रस होता है। और सर्वोच्च साहसिकता का यह रस है अभीप्सा—वह अभीप्सा जो तुम्हें पूर्णतः अपने अधिकार में कर लेती है और बिना कोई हिसाब लगाये, बिना कुछ बचाये और पीछे हट आने की किसी सम्भावना

के बिना, तुम्हें भागवत खोज के महान् साहसिक कार्य में, दिव्य मिलन के महान् साहसिक कर्म में, और 'भागवत उपलब्धि' के और भी महत्तर साहसिक कार्य में फेंक देती है; मनुष्य बिना पीछे ताके और एक क्षण भी यह पूछे बिना कि "क्या होने वाला है" अपने-आपको इस 'साहसिक कार्य' में, झोंक देता है। क्योंकि कोई यदि पूछता है कि क्या होने वाला है तो वह कभी प्रारम्भ ही नहीं करता, वह सदा धरती से चिपका रहता है, वहाँ, गड़ा रहता है, किसी वस्तु को खो देने, अपना सन्तुलन खो देने के भय से त्रस्त रहता है।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ८, पृ. ४९

प्रगति धीमी हो सकती है, पतन बार-बार हो सकते हैं, परन्तु यदि साहसपूर्ण संकल्प बनाये रखा जाये, तो यह निश्चित है कि हम एक दिन विजयी होंगे और यह देखेंगे कि सभी कठिनाइयाँ सत्य की जाज्वल्यमान चेतना के सामने गल गयी या विलीन हो गयी हैं।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १२, पृ. ८

साहस का अर्थ है भय के सभी रूपों की पूर्ण अनुपस्थिति।

साहस

निर्भीक, वह सभी ख़तरों का सामना करता है

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

अच्छाई

मैंने बहुत बार लोगों को यह कहते सुना है : "ओह ! अब जब मैं अच्छा बनने की कोशिश करता हूँ तो ऐसा लगता है कि सब मेरे साथ दुष्टतापूर्ण व्यवहार करते हैं !" लेकिन यह ख़ास तुम्हें यह सिखाने के लिए होता है कि स्वार्थ-भरे उद्देश्य के साथ अच्छा नहीं बनना चाहिये, इसलिए भी अच्छा नहीं बनना चाहिये कि दूसरे तुम्हारे साथ अच्छा व्यवहार करें—अच्छा बनने के लिए अच्छा बनना चाहिये।

हमेशा एक ही पाठ सीखना होता है : जितना अच्छा कर सकते हो करते चलो, जितना कर सको, उससे अधिक अच्छा करो; लेकिन परिणाम की आशा के बिना, परिणाम के बारे में सोचे बिना। यह मनोवृत्ति, अपने अच्छे कार्य के लिए पुरस्कार की आशा करना—अच्छा इसलिए बनना कि हम सोचते हैं कि उससे जीवन अधिक सरल होगा—अच्छे कार्य के सारे मूल्य को घटा देता है।

अच्छाई के प्रेम के कारण अच्छा बनना चाहिये, ईमानदारी के प्रेम के कारण ईमानदार होना चाहिये, पवित्रता के प्रेम के कारण पवित्र होना चाहिये और निःस्वार्थता से प्रेम के कारण निःस्वार्थ होना चाहिये; तब तुम राह पर आगे बढ़ोगे, यह बात निश्चित है।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ३, पृ. २९६

इस योग को, रूपान्तर के इस योग को, जो सभी चीज़ों में सबसे अधिक दुःसाध्य है, केवल तभी करो जब तुम यह अनुभव करो कि तुम यहाँ इसीलिए आये हो (यहाँ से मेरा मतलब है पृथ्वी पर) और इसके सिवाय तुम्हारा कोई काम नहीं है, कि तुम्हारे अस्तित्व का यही एकमात्र कारण है—चाहे इसके लिए तुम्हें बहुत अधिक परिश्रम करना पड़े, कष्ट उठाने पड़ें, संघर्ष करने पड़ें, उसका कोई महत्त्व नहीं—"मैं यही चाहता हूँ, और कुछ नहीं"—तब और बात है। वरना मैं कहूँगी : "ख़ुश रहो और नेक बनो, केवल इसी की मैं तुमसे माँग करती हूँ। नेक होने का अर्थ समझदार होने से है, यह जानना कि जिन अवस्थाओं में तुम पले वे असाधारण हैं, और साधारण जीवन से अधिक ऊँचा, अधिक श्रेष्ठ, अधिक सच्चा जीवन जीने

की कोशिश करो, ताकि इसके द्वारा इस चेतना का, इस प्रकाश का और इसकी नेकी का थोड़ा-सा अंश धरती पर अभिव्यक्त हो सके। यह बहुत अच्छा होगा।" **'श्रीमातृवाणी'** खण्ड ७, पृ. २२३

मुँह में मिठाई की अपेक्षा अच्छा कार्य हृदय के लिए ज़्यादा मीठा होता है। जो दिन अच्छा काम किये बिना बीतता है वह बिना आत्मा का दिन होता है।
'श्रीमातृवाणी' खण्ड १५, पृ. २५१

तुम्हें अपने हृदय में निरन्तर सद्भावना और प्रेम रखना चाहिये और उन्हें सभी के ऊपर शान्ति और समता के साथ प्रवाहित होने देना चाहिये।

भगवान् से प्रेम करने और धरती पर 'उनकी' सेवा करने का सबसे अच्छा तरीक़ा है अथक, स्पष्टदर्शी और व्यापक शुभ-चिन्ता जो सभी व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं से मुक्त हो।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १४, पृ. २०६-०७

सद्भावना

देखने में विनम्र, कोई दिखावा नहीं करती, लेकिन हमेशा उपयोगी होने के लिए तत्पर रहती है

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

उदारता

"सज्जनता और उदारता आत्मा के सूक्ष्म आकाश हैं; इनके बिना व्यक्ति काल-कोठरी में पड़ा कीड़ा ही दिखायी देता है।" **श्रीअरविन्द**

श्रीमाँ समझाती हैं : सज्जनता का अर्थ है समस्त वैयक्तिक हिसाब-किताब को अस्वीकार कर देना।

उदारता का अर्थ है दूसरों के सन्तोष में अपना सन्तोष पाना।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १०, पृ. ३२७

महालक्ष्मी के विषय में श्रीअरविन्द यहाँ कहते हैं : "वे सभी चीज़ें जो दीन-हीन होती हैं... उनके आगमन को रोकती हैं"?

हाँ, वह सब जो दरिद्र है, उदारता से रहित, उत्साह की प्रखरता से शून्य, प्राचुर्य से रहित, आन्तरिक समृद्धि से शून्य; जो कुछ सूखा, ठण्डा, गुड़ी-मुड़ी होता है वह सब महालक्ष्मी के आगमन को रोकता है। यहाँ प्रश्न स्थूल धन का नहीं है, समझे! एक अत्यन्त धनी व्यक्ति भी महालक्ष्मी की दृष्टि में भयानक रूप से दरिद्र हो सकता है। और एक बहुत दरिद्र व्यक्ति बहुत धनी हो सकता है यदि उसका हृदय उदार हो।...

दरिद्र मनुष्य वह व्यक्ति है जिसमें कोई गुण न हो, कोई शक्ति, कोई बल-सामर्थ्य, कोई उदार-भाव न हो। वह एक दुःखी, अभागा मनुष्य भी होता है। परन्तु कोई व्यक्ति केवल तभी दुःखी होता है जब वह उदार नहीं होता—यदि किसी के अन्दर ऐसा उदार स्वभाव हो जो बिना हिसाब लगाये अपने-आपको दे देता हो, तो वह कभी दुःखी नहीं होता। जो लोग स्वयं अपने-आप पर ही केन्द्रित होते हैं और जो सर्वदा अपनी ओर ही वस्तुओं को खींचना चाहते हैं, जो चीज़ों को और जगत् को अपने ही नज़रिये से देखते हैं—केवल ये ही लोग दुःखी होते हैं। परन्तु जब कोई अपने-आपको उदारतापूर्वक, हिसाब लगाये बिना, दे देता है तो वह कभी दुःखी नहीं होता—कभी नहीं। जो व्यक्ति लेना चाहता है बस वही दुःखी होता है; जो अपने-आपको दे देता है वह कभी वैसा नहीं होता।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ४, पृ. ४८५-८६

क्या उदारता सत्य का विकृत रूप है?

हाँ, सभी मानवीय गुण उनके पीछे रहने वाले सत्य के विकृत रूप हैं। और जिन चीज़ों को तुम गुण या दोष कहते हो वे सब हमेशा अपने पीछे रहने वाली किसी चीज़ के विकृत रूप होते हैं, और वह चीज़ न तो यह है, न वह, बल्कि कुछ और ही है। और फिर, मैं कहती हूँ, उदारता के पीछे जो सत्य पाया जाता है वह है, फैलने वाली शक्तियों की क्रिया। लेकिन इन शक्तियों के फैलने से पहले यह ज़रूरी है कि वे कहीं पर केन्द्रित हों। अतः, स्पन्दन की-सी एक गति होती है, पहले शक्तियाँ केन्द्रित होती हैं, फिर फैलती हैं और फिर वे पुनः केन्द्रित होती हैं और फिर फैलती हैं...। लेकिन अगर तुम हमेशा, इकट्ठा किये बिना फैलाते ही रहना चाहो तो कुछ समय के बाद तुम्हारे पास फैलाने के लिए कुछ भी नहीं बच रहता। शक्तियों के लिए—सभी शक्तियों के लिए—यही बात है।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ५, पृ. ३९१

मैं यहाँ नैतिक उदारता की चर्चा करना चाहती हूँ। उदाहरणार्थ, जब अपना कोई साथी सफल हो तो प्रसन्नता अनुभव करनी चाहिये। साहस के, निःस्वार्थ भाव के, उच्च त्याग के कार्यों में एक प्रकार का सौन्दर्य होता है जो हमें आनन्द प्रदान करता है। यह कहा जा सकता है कि नैतिक उदारता का तात्पर्य है दूसरों के यथार्थ मूल्य और श्रेष्ठता को पहचानने में समर्थ होना।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ४, पृ. ३६-३७

उदारता

बिना किसी मोल-तोल के
अपने-आपको निरन्तर देती
ही रहती है

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

समता

समता का अर्थ है अचञ्चल और स्थिर मन तथा प्राण; इसका अर्थ है घटित होने वाली या कही गयी या तुम्हारे प्रति की गयी वस्तुओं से अछूता रहना, विचलित न होना, बल्कि उनकी ओर सीधी नज़र से देखना, व्यक्तिगत भावना द्वारा उत्पन्न विकृतियों से मुक्त रहना, और उस चीज़ को समझने का प्रयास करना जो उनके पीछे विद्यमान है, यह समझना कि वे क्यों घटित होती हैं, उनसे क्या शिक्षा लेनी चाहिये, हमारे अन्दर ऐसी कौन-सी चीज़ है जिसके विरुद्ध वे फेंकी गयी हैं और उनसे कौन-सा आन्तरिक लाभ उठाया जा सकता है या उनकी सहायता से कौन-सी प्रगति की जा सकती है। इसका अर्थ है प्राणिक क्रियाओं के ऊपर आत्म-प्रभुत्व,—क्रोध, असहिष्णुता और गर्व तथा साथ ही कामना और अन्य चीज़ें—इन्हें अपनी भावनात्मक सत्ता पर अधिकार नहीं जमाने देना और आन्तरिक शान्ति को भंग नहीं करने देना, जल्दबाज़ी में और इन चीज़ों के द्वारा आवेग में आकर न बोलना और न ही कार्य करना, हमेशा आत्मा की एक स्थिर आन्तर स्थिति में रह कर कार्य करना और बोलना। इस समता को पूर्णतः, पूर्ण मात्रा में प्राप्त करना आसान नहीं है, परन्तु साधक को इसे अपनी आन्तरिक स्थिति तथा बाह्य क्रियाओं का आधार बनाने के लिए हमेशा अधिकाधिक प्रयास करते ही रहना चाहिये।

समता का एक दूसरा अर्थ भी है—मनुष्यों, उनकी प्रकृति और कर्म तथा उन्हें चलाने वाली शक्तियों के बारे में समता का दृष्टिकोण बनाये रखना; यह चीज़ मनुष्य की दृष्टि और विचार में विद्यमान समस्त व्यक्तिगत भावना को, यहाँ तक कि समस्त मानसिक पक्षपात को भी मन से दूर हटा कर मनुष्य तथा उनकी प्रकृति आदि के सत्य को देखने में सहायता पहुँचाती है। व्यक्तिगत भावना हमेशा ही विकार उत्पन्न करती है और मनुष्यों की क्रियाओं में, केवल स्वयं क्रियाओं को ही नहीं, बल्कि उनके पीछे विद्यमान उन चीज़ों को दिखाती है जो प्रायः वहाँ नहीं होतीं। उसका परिणाम होता है ग़लतफ़हमी और ग़लत निर्णय जिनसे बचा जा सकता था; उस समय सामान्य परिणाम लाने वाली चीज़ें बहुत बड़ा रूप ले लेती हैं। मैंने देखा है कि इसी चीज़ के कारण जीवन में इस प्रकार की आधी से अधिक अनपेक्षित घटनाएँ घटती हैं। परन्तु साधारण जीवन में व्यक्तिगत

भावना तथा अतिसंवेदनशीलता हमेशा ही मानव-स्वभाव का अंग बनी रहती हैं और आत्मरक्षा के लिए आवश्यक हो सकती हैं, यद्यपि, मेरी राय में, वहाँ भी, मनुष्यों और वस्तुओं के प्रति एक प्रबल, उदार और समता का मनोभाव रखना आत्मरक्षा का अधिक अच्छा उपाय सिद्ध होगा। परन्तु किसी साधक के लिए, उनके पार चले जाना और आत्मा की स्थिर शक्ति में कहीं अधिक निवास करना उसकी प्रगति का एक आवश्यक अंग है।

CWSA खण्ड २९, पृ.१३०-३१

समता का अर्थ कोई नया अज्ञान अथवा अन्धता नहीं है; यह हमसे दृष्टि के धुँधलेपन की तथा समस्त विविधता के अन्त की माँग नहीं करती और न इसे ऐसा करने की आवश्यकता ही है। भेद का अस्तित्व तो है ही, अभिव्यक्ति की विविधता भी विद्यमान है और इस विविधता की हम सराहना करेंगे,—पहले जब हमारी दृष्टि पक्षपातपूर्ण तथा भ्रान्तिशील प्रेम और घृणा से, स्तुति और निन्दा से, सहानुभूति और वैर-विरोध से तथा राग और द्वेष से तिमिराच्छन्न थी तब हम इसे जितना समझ पाते थे उसकी अपेक्षा अब बहुत अधिक ठीक रूप में समझ पायेंगे। परन्तु इस विविधता के मूल में हम सदा उस परिपूर्ण तथा निर्विकार ब्रह्म को ही देखेंगे जो इसके अन्दर विराजमान हैं और किसी भी विशिष्ट अभिव्यक्ति के—चाहे वह हमारे मानवीय मानदण्डों को सामञ्जस्यपूर्ण एवं पूर्ण प्रतीत होती हो या बेडौल एवं अपूर्ण और चाहे वह मिथ्या एवं अशुभ ही क्यों न प्रतीत होती हो—ज्ञानपूर्ण प्रयोजन या दिव्य आवश्यकता को हम अनुभव करेंगे और जानेंगे अथवा यदि यह हमसे छिपी हुई हो तो कम-से-कम इसमें विश्वास अवश्य करेंगे।

CWSA खण्ड २३, पृ.२२४-२५

समता

निर्विकार शान्ति तथा अचञ्चलता

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

शान्ति

स्वयं तुम्हारी सत्ता की गहराइयों में, तुम्हारे वक्ष की गहराई में, ज्योतिर्मयी तथा शान्त, प्रेम तथा प्रज्ञा से भरपूर 'भागवत उपस्थिति' हमेशा विराजमान रहती है। वह वहाँ इसलिए है कि तुम उसके साथ तदात्म हो सको और वह तुम्हें एक ज्योतिर्मयी तथा दीप्त चेतना में रूपान्तरित कर दे।

मैं और तुम दोनों मिल कर तुम्हारी सत्ता की सतह के समस्त बाहरी शोर को शान्त करने की कोशिश करेंगे ताकि निश्चल-नीरवता तथा शान्ति में तुम इस आन्तरिक भव्यता के साथ एक हो सको।

तब वह दिवस तुम्हारे नूतन जन्म का दिवस बन जायेगा।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १७, पृ. ४७६-७७

माँ, मुझे अधिक शान्त बनाओ।

हर बार जब तुम्हें बेचैनी का अनुभव हो तो तुम्हें बाहर आवाज़ किये बिना, साथ ही मेरे बारे में सोचते हुए, अपने अन्दर बोलते हुए यह दोहराना चाहिये: "शान्ति, शान्ति, हे मेरे हृदय!" तुम इसे लगातार कहो और परिणाम से तुम्हें ख़ुशी होगी। मेरा प्रेम और मेरे आशीर्वाद।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १६, पृ. १७२-७३

... कम-से-कम दो बार प्रतिदिन, नीरवता प्राप्त करने का अभ्यास करना सर्वदा ही बहुत अच्छा है, परन्तु वह सच्ची नीरवता होनी चाहिये, केवल बातचीत बन्द करना ही नहीं होना चाहिये।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड ३, पृ. २०९

शान्ति और स्थिरता बीमारी के महान् उपचार हैं।

जब तुम अपने कोषाणुओं में शान्ति ला सको, तुम नीरोग हो जाते हो।

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १५ पृ. १६७

सत्ता में भागवत उपस्थिति का पहला चिह्न है शान्ति।

शान्ति एक ऐसी निश्चल-नीरवता है जो ऐसी चीज़ में गभीर रूप से उतर जाती है जो बहुत सकारात्मक होती है, जो प्रायः तरंगहीन शान्त 'आनन्द' बन जाती है।

CWSA खण्ड २९, पृ. १३७

एक अर्थ में यह तमस् और शम (शान्ति) एक दूसरे के चित और पट यानी प्रतिरूप हैं। उच्चतर 'प्रकृति' शान्ति में आराम पाती है और निम्नतर उस आराम को ऊर्जा के छितराव में पाने का प्रयास करती है, फलस्वरूप वह अवचेतना यानी तमस् में जा लौटती है।

CWSA खण्ड ३०, पृ. ४७७

उच्चतर आध्यात्मिक चेतना की 'शान्ति', 'शक्ति', 'प्रकाश', 'आनन्द' सभी ऊपर परदे के पीछे विद्यमान हैं। इनको नीचे उतारने के लिए इनके प्रति कुछ उद्घाटन आवश्यक होता है—और इनके अवतरण के लिए उत्तम अवस्थाएँ हैं—अपने मन को शान्त रखना और साथ ही उतरते हुए 'प्रभाव' के प्रति एक प्रशस्त संकेन्द्रित समर्पण की भावना रखना।

CWSA खण्ड ३०, पृ. ४८२ **श्रीअरविन्द**

शान्ति

सभी परिस्थितियों में हमेशा वही चाहना जो 'तू' चाहता है—यही है अटल शान्ति का आनन्द लेने का एकमात्र तरीक़ा

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

परीक्षक

(पूर्णयोग में सहायक गुण)

पूर्णयोग में ऐसी परीक्षाओं की एक अविच्छिन्न शृंखला होती है जिनमें से तुम्हें पूर्व चेतावनी के बिना गुज़रना पड़ता है और इस तरह तुम्हें हमेशा सावधान और चौकन्ना रहना पड़ता है।

परीक्षकों के तीन दल ये परीक्षाएँ लेते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है, उनके तरीक़े बहुत भिन्न होते हैं। कभी-कभी तो देखने में इतने परस्पर-विरोधी मालूम होते हैं कि ऐसा लगता है कि यह सम्भव ही नहीं कि वे एक ही लक्ष्य की ओर ले जा रहे हों। फिर भी वे एक-दूसरे के पूरक होते हैं, एक ही उद्देश्य के लिए काम करते हैं और परिणाम की पूर्णता के लिए सभी अनिवार्य हैं।

तीन प्रकार की परीक्षाएँ ये हैं : प्राकृतिक शक्तियों द्वारा नियुक्त, आध्यात्मिक और दिव्य शक्तियों द्वारा नियुक्त और विरोधी शक्तियों द्वारा नियुक्त। इनमें अन्तिम प्रकार की देखने में सबसे ज़्यादा भ्रामक होती हैं और इनसे अनजाने में, बिना तैयारी पकड़े जाने से बचने के लिए एक सतत सावधानी, सच्चाई और विनम्रता की अवस्था ज़रूरी होती है।

बिलकुल ही मामूली परिस्थितियाँ, दैनिक जीवन की घटनाएँ, देखने में अधिक-से-अधिक नगण्य लोग या चीज़ें, ये सब इनमें से किसी-न-किसी परीक्षक दल के होते हैं। परीक्षाओं के विशाल और जटिल संगठन में वे घटनाएँ जो जीवन में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं सबसे सरल परीक्षाएँ होती हैं, क्योंकि उनके लिए तुम तैयार और सावधान होते हो। रास्ते के छोटे-छोटे पत्थरों पर ठोकर खाना ज़्यादा आसान होता है, क्योंकि वे ध्यान नहीं खींचते।

सहनशीलता और नमनीयता, प्रसन्नता और निर्भीकता ऐसे गुण हैं जिनकी भौतिक प्रकृति की परीक्षाओं में ख़ास ज़रूरत होती है।

आध्यात्मिक परीक्षाओं के लिए अभीप्सा, विश्वास, आदर्शवाद, उत्साह और उदारतापूर्ण आत्मोत्सर्ग आवश्यक हैं।

और विरोधी शक्तियों की परीक्षाओं के लिए जागरूकता, सच्चाई और विनम्रता की ज़रूरत होती है।...

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १४, पृ. ४५-४६

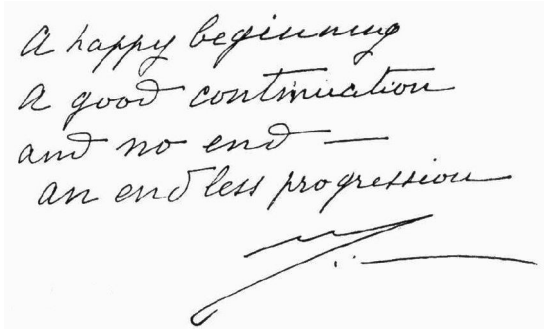

2020 Calendar

January

S	M	T	W	T	F	S
			1	2	3	4
5	6	7	8	9	10	11
12	13	14	15	16	17	18
19	20	21	22	23	24	25
26	27	28	29	30	31	

February

S	M	T	W	T	F	S
						1
2	3	4	5	6	7	8
9	10	11	12	13	14	15
16	17	18	19	20	21	22
23	24	25	26	27	28	29

March

S	M	T	W	T	F	S
1	2	3	4	5	6	7
8	9	10	11	12	13	14
15	16	17	18	19	20	21
22	23	24	25	26	27	28
29	30	31				

April

S	M	T	W	T	F	S
			1	2	3	4
5	6	7	8	9	10	11
12	13	14	15	16	17	18
19	20	21	22	23	24	25
26	27	28	29	30		

May

S	M	T	W	T	F	S
					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	30
31						

June

S	M	T	W	T	F	S
	1	2	3	4	5	6
7	8	9	10	11	12	13
14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27
28	29	30				

July

S	M	T	W	T	F	S
			1	2	3	4
5	6	7	8	9	10	11
12	13	14	15	16	17	18
19	20	21	22	23	24	25
26	27	28	29	30	31	

August

S	M	T	W	T	F	S
						1
2	3	4	5	6	7	8
9	10	11	12	13	14	15
16	17	18	19	20	21	22
23	24	25	26	27	28	29
30	31					

September

S	M	T	W	T	F	S
		1	2	3	4	5
6	7	8	9	10	11	12
13	14	15	16	17	18	19
20	21	22	23	24	25	26
27	28	29	30			

October

S	M	T	W	T	F	S
				1	2	3
4	5	6	7	8	9	10
11	12	13	14	15	16	17
18	19	20	21	22	23	24
25	26	27	28	29	30	31

November

S	M	T	W	T	F	S
1	2	3	4	5	6	7
8	9	10	11	12	13	14
15	16	17	18	19	20	21
22	23	24	25	26	27	28
29	30					

December

S	M	T	W	T	F	S
		1	2	3	4	5
6	7	8	9	10	11	12
13	14	15	16	17	18	19
20	21	22	23	24	25	26
27	28	29	30	31		

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

जनवरी

१. सबसे घने अन्धकार के दिनों में श्रद्धा सबसे अधिक निश्चित पथ-प्रदर्शक है।

२. हर एक अपूर्ण है और उसे प्रगति करनी है। दृढ़ और विश्वस्त रहो।

३. हमारे जीवन के प्रत्येक क्षण, सभी अवस्थाओं में 'भागवत कृपा' हमें सभी कठिनाइयों को पार करने में हमारी सहायता के लिए मौजूद है।

४. जीवन को भगवान् के प्रति अर्पित पुष्प की भाँति खिलना चाहिये।

५. सम्पूर्ण अर्पण : सिद्धि का सबसे अधिक निश्चित मार्ग।

६. सच्चाई के साथ भगवान् की हर सेवा साधना है।
सेवा करने की ललक में वृद्धि प्रगति का निश्चित लक्षण है।

७. हे प्रभो! वर दे कि 'भागवत प्रेम' और 'ज्ञान' हमेशा हमारे विचारों और हमारी क्रियाओं पर शासन करें।

८. सच्ची 'शक्ति' हमेशा अचञ्चल होती है। बेचैनी, उत्तेजना और अधीरता है—दुर्बलता और अपूर्णता के निश्चित लक्षण।

९. जब हृदय और मन शान्त हों तो बाक़ी सब स्वभावतः आ जाता है।

१०. कभी-कभी हम शब्दों द्वारा समझ सकते हैं, परन्तु जानते नीरवता में ही हैं।... सर्वाधिक आदर-सम्मान नीरवता में है।

११. चलो, प्रसन्न हो जाओ, अगर हम डटे रहना और सहन करना जानें तो सब कुछ ठीक हो जायेगा।

१२. भागवत कृपा की ओर खुलो और तुम सह सकोगे।

१३. एक दिन में कोई अपने स्वभाव पर विजय नहीं पा सकता। लेकिन धैर्यपूर्ण और सहनशील संकल्प द्वारा 'विजय' आकर रहेगी।

१४. उल्लासपूर्ण उत्साह : जीवन का सामना करने का सबसे अच्छा तरीक़ा।

१५. हमारी आशाएँ कभी इतनी बड़ी नहीं होतीं कि वे अभिव्यक्त न हो सकें। हम किसी ऐसी चीज़ की कल्पना नहीं कर सकते, जो हो न सके।

१६. अगर कोई सदा मुस्कुरा सके तो वह सदा युवा रहता है।

१७. हमेशा अच्छे बने रहो और तुम हमेशा ख़ुश रहोगे।

१८. असामञ्जस्य के बाहरी कारणों की अपेक्षा अधिक खोज करो आन्तरिक कारणों की। अन्तर ही बाह्य पर शासन करता है।

१९. अगर तुम्हारे अपने हृदय में शान्ति न हो तो तुम उसे और कहीं भी न पा सकोगे।

२०. शान्ति असीम होनी चाहिये, अचञ्चलता गहरी और निश्चल, स्थिरता अटल और भगवान् पर विश्वास हमेशा बढ़ने वाला।

२१. तुम जितना अधिक बुड़बुड़ाओगे, तुम्हारे दुःख-दर्द और कष्ट उतने ही अधिक बढ़ेंगे।

२२. अपनी अशुद्धियों के बारे में बहुत ज़्यादा सोचना सहायता नहीं करता। तुम जो पवित्रता, प्रकाश और शान्ति प्राप्त करना चाहते हो उन पर अपने विचार को स्थिर रखना ज़्यादा अच्छा है।

२३. कभी किसी बाधा पर केन्द्रित न होओ; वह केवल उसे अधिक बलशाली बना देती है।

२४. हमेशा हमारी कमज़ोरियाँ ही हमें उदास करती हैं, हम मार्ग पर एक क़दम आगे बढ़ कर आसानी से पुनः स्वस्थ हो सकते हैं।

२५. अपने सुख के बारे में व्यस्त रहना दुःखी होने का सबसे निश्चित उपाय है।

२६. सारी चिन्ता, जिसमें प्रगति की चिन्ता भी शामिल है, 'भागवत कृपा' पर छोड़ दो तो तुम शान्ति से रहोगे।

२७. कोई भी कठिनाई क्यों न हो, अगर हम सचमुच शान्त रहें तो समाधान मिल जायेगा।

२८. काम अपने पूरे दिल से, जितना अच्छे-से-अच्छा कर सकते हो करो, और मेरे आशीर्वाद और मेरी सहायता हमेशा तुम्हारे साथ रहेंगे।

२९. जो भी काम सावधानी से किया जाये वह मज़ेदार बन जाता है।

३०. सच्चाई के साथ, प्रगति के लिए प्रयास करो, और धीरज के साथ, अपने प्रयास के फल की प्रतीक्षा करना सीखो।

३१. प्रश्न : पिछले दिनों इतनी अधिक समस्याएँ मेरे सामने रही हैं। पता नहीं, उन्हें हँसी-ख़ुशी कैसे हल किया जाये?

उत्तर : 'स्थायी' और 'सच्चा' सुख पाने का एकमात्र उपाय है : 'भागवत कृपा' पर पूर्ण और ऐकान्तिक निर्भरता।

केवल उन्हीं के यहाँ पधारे हों...

जब श्रीकृष्ण भूभार हरने के लिए धरा पर उतरे उस समय मिथिला के सिंहासन पर महाराज बहुलाश्व थे। तत्त्वज्ञान तो उनकी पैतृक सम्पत्ति थी और भक्ति की धाराएँ तो मिथिला के जन-जन में बहा करती थीं और राजा बहुलाश्व तो उनके शीर्षस्थ थे—साक्षात् भक्ति और ज्ञान की विभूति। और जब से श्रीबलराम मिथिला में पधारे थे राजा बहुलाश्व के अन्तःकरण से दिन-रात बस यही मूक प्रार्थना उठा करती थी, "हे जनार्दन! हे कृष्ण! कब तुम्हारे सशरीर दर्शन होंगे, कब इस अकिञ्चन भक्त पर कृपा करोगे और अपने पवित्र चरणों की धूल से कब मिथिला नगरी का उद्धार करोगे प्रभो!" बहुलाश्व ने कभी वाणी में अपनी यह प्रार्थना श्रीबलराम के सामने भी मुखरित न की क्योंकि उनकी प्रीति अद्‌भुत थी। वे यह मानते थे कि मेरे आराध्य श्रीकृष्ण जब उचित समझेंगे, जब मुझे वे अधिकारी समझेंगे तब स्वयं यहाँ पधारेंगे। श्रीबलराम से कह कर उन्हें यहाँ आने के लिए विवश क्यों किया जाये या संकोच में क्यों डाला जाये! करुणा के वे असीम सागर किसी की सच्ची पिपासा को बुझाने तुरन्त चले आते हैं। शायद मेरे मन के किसी कोने में कोई खोट है, नहीं तो... बहुलाश्व के मन में तरह-तरह के विचार उठा करते। "हम उनके हैं और वे हमारे"। आस्था की इसी डोर को पकड़े मिथिलानरेश अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में आँखें बिछाये बैठे रहते।

भक्त पुकारे और भगवान् दौड़ न पड़ें ऐसा कभी भारतवर्ष के इतिहास में हुआ है जो अब होता? श्रीकृष्ण तो सचमुच अपने आराधक बहुलाश्व की पहली मूक पुकार सुन कर ही उसके हृदयेश्वर बन बैठे थे, अब प्रत्यक्ष रूप से अपने प्रिय भक्त के पास जाने के लिए इतने व्याकुल हो उठे कि उस दिन प्रातःकाल ही उन्होंने मिथिला जाने की घोषणा कर दी।

यह यात्रा भी औरों से भिन्न थी। तत्त्वज्ञान के मुकुटमणि के यहाँ जाना था अतः साथ में लिये महर्षिगण—देवर्षि नारद, वामदेव, महर्षि अत्रि, वेदव्यासजी, भगवान् परशुराम, देवगुरु बृहस्पति, कण्व, च्यवन, गौतम, इत्यादि अनेकानेक महर्षियों के संग वे मिथिला के लिए रवाना हो गये।

यद्यपि द्वारिका से बहुत दूर है मिथिला, और यदि श्रीकृष्ण चाहते तो

एक दिन में सभी मिथिला पहुँच जाते, लेकिन जब प्रभु यात्रा पर निकले हों और साथ में सभी प्रमुख महर्षि, देवर्षि भी हों तो पग-पग पर जनसमूह का भक्ति-सागर तो उनके चरण पखारने उमड़ा चला आयेगा ही। मार्ग के ग्रामों तथा वन-प्रान्त की कुटीरों तक के निवासी—नर-नारी, आबाल-वृद्ध —सभी अपने प्रभु के चरणों में अपनी सामर्थ्य के अनुसार भेंट चढ़ाने दौड़े चले आये। भक्ति और प्रीति के इस सागर में वे करुणासिन्धु भी बह चले, तन-मन पसीजा जा रहा था उनका, और आँखें! वे तो आँसुओं से इतनी धुँधलायी हुई थीं कि प्रभु अपने आन्तर चक्षु से ही सब कुछ देख रहे थे।

हर पग पर वन्य कुटीर से लेकर राजप्रासाद तक के लोगों का समान आग्रह था—"प्रभो! आप इन भुवनवन्द्य महर्षियों के साथ निकले हैं तो कुछ क्षणों के लिए हमारे यहाँ पधार कर हमारे आवास और कुल को भी अपने श्रीचरणों से पवित्र कर दें।" और वे सबका प्रेमाग्रह स्वीकार करते चले जा रहे हैं! सबके स्नेह का सत्कार और साथ ही यात्रा भी अबाध चल रही है!! —कैसे हो रही थी यह सारी लीला यह हम जैसे सामान्य बुद्धिवालों की समझ के परे है। अतः हम भी प्रभु के साथ उस पुण्य भूमि पर चलें जहाँ चमत्कार-सा हो रहा था। "द्वारिकाधीश भगवान् श्रीकृष्ण पधार रहे हैं" की गुहार से मिथिला का पत्ता-पत्ता रोमाञ्चित हो उठा था। महाराज बहुलाश्व के आनन्द का, उत्साह का वर्णन शब्दों में करना तो असम्भव है। अपने अधीश्वर के दर्शन करने को उनका सारा शरीर चक्षु बन गया था। और महर्षि याज्ञवल्क्य तक जहाँ शिष्यों के साथ अर्घ्य उठाये आनन्द-विह्वल दौड़ पड़े हों वहाँ सामान्य जनता की ख़ुशी का वर्णन भला कैसे किया जाये!!

प्रभु का वह अपूर्व स्वागत देखने के लिए देवता भी आसमान पर झुक आये और कृतकृत्य कर दिया नाथ ने समस्त मिथिलावासियों को। महाराज बहुलाश्व जनार्दन से राजभवन पधारने की प्रार्थना करने बढ़े; उन्हें लगा कि ये सर्वेश्वर मुझ पर अनुकम्पा करके यहाँ पधारे हैं। आज मेरी प्रतीक्षा, मेरी श्रद्धा सफल हुई, किन्तु महाराज के साथ-ही-साथ दुर्बल देह, जीर्णवसन ब्राह्मणश्रेष्ठ श्रुतदेव भी बढ़े श्रीद्वारिकाधीश से अपनी कुटिया में पधारने की प्रार्थना करने।

श्रुतदेव वेद-वेदांग के प्रकाण्ड पण्डित और साथ ही परम भगवद्भक्त भी

थे। उनकी कुटीर में था कुश का आसन, कमण्डल, तथा एक-दो साधारण पात्र। उनका नियम था कि भिक्षा स्वयं ले आते थे। बस एक बार भोजन करते थे, उससे अधिक भिक्षा लेना कभी स्वीकार तक न करते थे। मिथिला में ये सबके पूज्य, सबके आदरणीय थे। उन्हें इस बात का निश्चय हो गया कि ये दीनबन्धु अकिञ्चनों के ही तो अपने हैं, मेरा ही जन्म-जन्मान्तर सफल करने मिथिला पधारे हैं, अञ्जलि बाँधे राजा और यती दोनों की वाणी एक साथ फूट पड़ी—"हे सर्वेश्वर! आपने अपने इस भक्त पर कृपा की तो अब अपने श्रीचरणों से इसके आवास को भी पवित्रतम बना दें।"

समस्त जनसमूह स्तब्ध खड़ा रह गया, यहाँ तक कि देवर्षिगण भी अचम्भे में आ गये—"प्रभु एक साथ दोनों प्रेममूर्तियों की प्रार्थना कैसे स्वीकार करेंगे भला?" बस एक भुवनमोहिनी मुस्कान खेल रही थी तो श्रीकृष्ण के अधरों पर। विशुद्ध प्रेम के वशीभूत उन प्रभु के सामने तो कोई समस्या थी ही नहीं। रथ में बैठे महर्षियों की ओर देख कर श्रीकृष्ण एक बार मुस्कुराये और उनका रथ चल पड़ा। महाराज और तपस्वी दोनों प्रसन्न। दोनों को लगा, ऋषिगणों के साथ श्रीद्वारिकाधीश का रथ उनके द्वार पर ही आकर रुका।

महाराज बहुलाश्व कृतार्थ हो गये। श्रीकृष्णचन्द्र के साथ समस्त देवर्षियों की पूजा-अभ्यर्थना में समस्त निमिकुल निमग्न हो गया, धन्य हो उठा। जब मानों दिन क्षणों में और महीने दिनों में बदल कर बीत गये तब एक दिन श्रीकृष्ण ने बहुत संकोच के साथ द्वारिका लौटने की अपनी इच्छा जतायी।

इधर उस दिन भगवद्भक्त श्रुतदेव की कुटिया के द्वार पर भी सभी महर्षियों के साथ श्रीकृष्ण का गरुड़ध्वज रथ आकर रुका था। श्रुतदेव तो आनन्द से पागल हो उठे, अपना उत्तरीय हवा में फहराते हुए नृत्य करने लगे, वे तो यह भूल ही गये कि उन्हें आगन्तुकों का स्वागत करना है, उन्हें आसन देना है। लेकिन भगवान् क्या भक्त के स्वागत की बाट जोहते हैं। स्वयं उन्होंने कुश के आसन बिछा कर सभी महर्षियों को सादर बिठलाया और फिर सब मुग्धनेत्र श्रुतदेव का वह प्रेमोन्मत्त नृत्य देखने में निमग्न हो गये।

काफ़ी समय बाद जब श्रुतदेव प्रकृतिस्थ हुए तो उन्हें यह देख कर अपने ऊपर लज्जा आयी कि प्रभु स्वयं आसन बिछा कर बैठे। लेकिन वह बाह्य लज्जा भला कितनी देर साथ देती, अपने प्रभु का पूजन-सत्कार

आरम्भ करते न करते तो वे फिर भक्ति के उसी प्रेमावेश में बह चले। वे तो बस श्रीकृष्णमय बन गये थे। भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रुतदेव को इशारे से कहा भी कि वे पहले देवर्षियों की अभ्यर्थना करें, लेकिन जिस भक्त के लिए जग का कण-कण वासुदेव की झाँकी में बदल गया हो वह कौन-से इशारे समझेगा भला? देवर्षिगण भी ऐसी भक्ति को देख सुधन्य हो उठे और स्वयं प्रभु! वे तो आज स्वयं को अपने भक्तों से भी कहीं अधिक कृतार्थ मान रहे थे।

यहाँ भी महीनों को क्षणों में बदलते समय न लगा।

अन्त में जब श्रीद्वारिकाधीश ने ऋषिगणों के साथ श्रुतदेव से विदा चाही तो वे सन्त देश और काल की सीमा में उतरे।

उधर महाराज बहुलाश्व और इधर यती श्रुतदेव दोनों ने अपने हृदयेश को प्रसन्नतापूर्वक विदा दी। नहीं, सम्भवतः कहने में कुछ चूक हो गयी —विदेहनगरी मिथिला के प्रत्येक वासी ने उस दिन अपने-अपने घरों से श्रीकृष्णचन्द्र और देवर्षिगण को इतने आह्लाद, प्रेम और सत्कारपूर्वक विदा किया मानों श्रीकृष्ण केवल उन्हीं के घर पधारे हों!

'पुरोधा', सितम्बर २००७ से —वन्दना

मेरी मधुर माँ,

मैं गहरी शान्ति, बहुत गहरी शान्ति चाहता हूँ। मुझे लगता है कि मैं हमेशा आपकी भुजाओं में रहता हूँ।

हाँ, मेरी भुजाओं में रहना अच्छा है। वहाँ तुम्हें वह शान्ति मिलेगी जिसके लिए तुम्हारे अन्दर इतनी अभीप्सा है; और वह विश्राम मिलेगा जिसमें से सच्ची ऊर्जाएँ आती हैं।

मेरा प्रेम तुम्हें घेरे रहता और सदा आलिंगन में रखता है।

—श्रीमाँ

Date of Publication: 1st January 2020
Rs. 30 (Monthly)

Registered: PY/47/2018-20
RNI No. 18135/70

A school by **The Vatika Group** vatika

Nature Friendly

"My child is in Grade 2. My son's journey with this school started 3 years back.

What really drew me to the school at the first instance is the calmness that prevails in the atmosphere!

Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy – class rooms in MatriKiran are the most nature friendly, spacious, well ventilated, they open out to green spaces... perfect to stay in communion with nature."

Dr. Nidhi Gogia
Mother of Soham Sharma, Grade 2

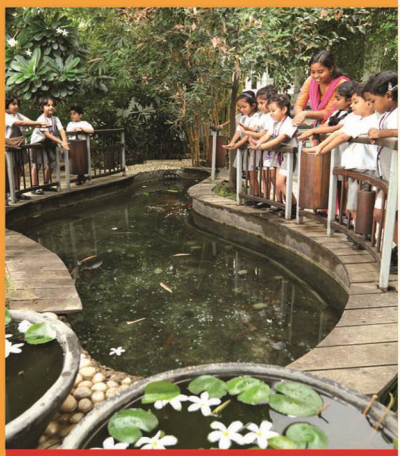

ADMISSIONS OPEN
Academic Year 2019-20

ICSE Curriculum

MatriKiran
www.matrikiran.in

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 to Grade 9

Junior School
W Block, Sec 49, Sohna Rd, Gugaon
+91 124 4938200, +91 9650690222

Senior School
Sec 83, Vatika India Next, Gugaon
+91 124 4681600, +91 9821786363